॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

२०६

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक

[समालोचना और टिप्पणी सहित]

(छात्र-संस्करण)

शुभाशंसक—

पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर

प्रधान सम्पादक 'आज' काशी

H
812.2
B 469 S

लक्ष्मीशङ्कर व्यास

H
812.2
B469S

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
SIMLA

॥ श्रीः ॥

हरिदास–संस्कृत–ग्रन्थमाला
२०६

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रचित

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक

(समालोचना और टिप्पणी सहित)

सम्पादक
श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास, एम० ए० आनर्स
सहायक सम्पादक 'आज' काशी।

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१

वि० सं० २०१५] मूल्य [ई० १९५८

प्रकाशक :—

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस,

वाराणसी-१

OF ADVANCED STUDY
INDIA
SIMLA
63.27....
Date 15/10/65
1110/65

(सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः)

The Chowkhamba Sanskrit Series Office.

P. O. Box 8, Varanasi.

(INDIA)

1958

(तृतीयं संस्करणम्)

H
812.2
B-[illegible]S

Library IIAS, Shimla
H 812.2 B 469 S
00006309

मुद्रक :—

विद्याविलास प्रेस,

वाराणसी-१

शुभाशंसा

बाबूराव विष्णु पराड़कर

प्रधान सम्पादक 'आज'

मेरे मित्र श्री लक्ष्मीशंकर व्यास द्वारा संपादित और टिप्पणी सालंकृत यह संस्करण दोनों हरिश्चन्द्रोंकी कीर्तिकी भांति आकर्षक हो !

सौर १८ भाद्रपद,
२००७

दो शब्द

'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक के इस संस्करण का सम्पादन मुख्यतः इसी बात को ध्यान में रखकर किया गया है कि यह विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयुक्त और उपयोगी हो। भूमिका के अन्तर्गत समालोचना तथा पात्रों के चरित्रविश्लेषण के अतिरिक्त भाव तथा अर्थ स्पष्ट करने के हेतु यथास्थान पादटिप्पणियां भी दी गयी हैं। अब तक के अधिकांश सम्पादित संस्करणों में गद्यांश की ही पाद-टिप्पणियाँ हैं और पद्य का अर्थ अन्यत्र दिया गया है। इस संस्करण में विद्यार्थियों की कठिनाई का ध्यान रख, गद्य-पद्य के कठिन स्थलों के साथ ही साथ पाद-टिप्पणियां दी गयी हैं तथा नाटक में आने वाले पारिभाषिक शब्दों की भी व्याख्या यथास्थान हुई है। आशा है, विद्यार्थी वर्ग के लिए यह विशेष संस्करण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

—लक्ष्मीशङ्कर व्यास

जन्माष्टमी, २००७
व्यास-निवास, काशी।

नाटक की विशेषताएँ

सत्यहरिश्चन्द्र नाटक के साथ हिन्दी साहित्य और हिन्दी रंगमंच का इतिहास जुड़ा हुआ है। साहित्य का इसलिए कि इसी नाटक से प्रौढ़ हिन्दी नाटकों का प्रणयन आरम्भ समझा जाना चाहिये। इस के पहले हिन्दी में इने गिने नाटक लिखे गये पर प्रभाव और प्रचार के विचार से सत्यहरिश्चन्द्र नाटक सर्वप्रथम और सर्वजनप्रिय रहा। यद्यपि इस का आधार 'चंडकौशिक' है पर जिस रूप में भारतेन्दु बाबू ने इसका प्रणयन किया, उसे मौलिक ही कहना ठीक होगा। हिन्दी में यह अभिनेय नाटक सब से सफल रहा है। भारतेन्दु बाबू के जीवनकाल से अब तक सारे भारत में इसका अभिनय होता रहा है। इसी में हिन्दी रंगमंच के विकास की रेखा देखी जा सकती है। नाटक के अभिनय के विचार से चौथा दृश्य अपेक्षाकृत लम्बा हो गया है, पर मार्मिक, करुण और भयानक दृश्यों से इतना ओत प्रोत है कि वह दर्शक अथवा पाठक को उतना नहीं खलता। राजा हरिश्चन्द्र के समय गंगा पृथ्वी पर नहीं थीं, पर भारतेन्दु ने उसका वर्णन किया है। पर लोकदृष्टि तथा नाटकीय प्रभाव के सामने यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं खलता। बिना गंगा के काशी की कल्पना ही विचित्र है। अतः साहित्य और रंगमंच दोनों विचारों से नाटक सफल है और उसका अत्यधिक महत्व है।

नाटक में राजा हरिश्चन्द्र का चरित्रचित्रण अत्यन्त आदर्श होते हुए भी पूर्ण रूप से मानवीय है। रानी शैव्या और रोहिताश्व के चरित्र से करुणरस का परिपाक अत्यन्त मार्मिकता से हुआ है। करुणरसप्रधान इस नाटक में सत्यप्रियता, धर्मपराणयता, सहनशीलता, कर्त्तव्यपालन और दानवीरता का श्रेष्ठ निदर्शन हुआ है। नाटक में काशी और गंगा का जो वर्णन है, वह बहुत ही सुन्दर हुआ है। श्मशान की भयंकरता के साथ इस संसार की असारता और अस्थिरता का अत्यन्त प्रभावोत्पादक चित्रण नाटककार ने किया है। महाशय और उदार कौन हैं—इस की बड़ी सुन्दर परिभाषा इस नाटक में इन्द्र-नारद-वार्ता में हुई है।

सबसे मुख्य बात तो यह है कि बालकों तथा साधारणजनों के लिए लिखा गया यह नाटक अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहता है। भले ही ऐतिहासिक दृष्टि से तथा शास्त्रीय सूक्ष्म विचार करने पर इस में दोष-दर्शन कराये जा सकते हैं, पर

नाटक जिस लक्ष्य-विशेष को सामने रख कर लिखा गया है, उसमें वह अत्यन्त ही खरा और सफल उतरा है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। सत्यहरिश्चन्द्र नाटक, भारतीय आदर्श को सम्मुख रखकर जनजीवन में सत्य, दान, विनय, सहिष्णुता, विपत्ति में धैर्य रखने तथा अपने वचन का पालन करने के लिए त्याग करने का अत्यन्त प्रभावोत्पादक स्वरूप उपस्थित करता है। यह लोकसाहित्य की स्थायी रचना है जो आज की भांति आने वाले युग में भी जनजीवन में सद्भावों का संचार और स्फुरण करती रहेगी।

नाटक के मुख्य पात्र और उनका चरित्र

सत्यहरिश्चन्द्र नाटक में चार प्रधान पात्र हैं—(१) राजा हरिश्चन्द्र (२) रानी शैव्या (३) रोहिताश्व और (४) विश्वामित्र। इनके अतिरिक्त अन्य सहायक पात्र हैं, जो प्रसङ्गानुसार आते हैं।

हरिश्चन्द्र—हरिश्चन्द्र ही नाटक के धीरोदात्त नायक हैं। सत्य और दान-शीलता की ये प्रतिमूर्ति हैं और महानुभावता के आदर्श। सत्य की रक्षा के लिए राजा हरिश्चन्द्र क्या नहीं करते—सब कुछ त्याग कर अपने सत्य का रक्षण करते हैं और अपने वचन पर अटल रहते हैं। राजपाट देकर, पत्नी-पुत्र को बेंच और स्वयं चाण्डाल की दासता स्वीकार कर आपने सिद्ध कर दिया कि—

'चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य विचार'॥

स्वप्न की बात को भी आप सत्य घटना मानकर सारी पृथ्वी का राज दान कर देते हैं सब कुछ दे चुकने पर दक्षिणा के लिए आप, पत्नी और पुत्र सहित विक जाते हैं। विश्वामित्र अत्यधिक कटुता और क्रोधपूर्ण व्यवहार करते हैं, पर राजा हरिश्चन्द्र अपनी नम्रता तथा सौम्यता कभी नहीं छोड़ते। तपस्वी ब्राह्मण के शाप का उन्हें सदा भय रहता है।

विपत्ति में मनुष्य अपना विवेक और धैर्य खो बैठता है पर राजा हरिश्चन्द्र ने जिस धैर्य तथा सत्य बुद्धि से अथ से इति तक कथन व्यक्त किये और कार्य सम्पन्न किये, वे उन्हें वस्तुतः सत्यवादी और दानवीर बनाते हैं। नाटक में राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र अत्यन्त आदर्शवादी होते हुए भी मानवीय है। उन्हें अपनी

पत्नी की कोमलता और पुत्र की दयनीय स्थिति का स्मरण आता है और क्षणभर के लिए वे विचलित से मालूम होते हैं, पर तत्काल ही उन्हें अपने कर्त्तव्य का ध्यान हो आता है। क्षणभर की यह मोह-माया उनके चरित्र को मानवीय बनाती है। अपनी पिछली स्थिति को स्मरण कर जब जब उनके अन्तस्तल में अन्तर्द्वन्द्व छिड़ता है तो वह क्षणिक ही रहता है। यदि उनके चरित्र में यह मानवीय दुर्बलता न होती तो उनका चरित्र पत्थर के देवता का चरित्र हो जाता। इन सबके होते हुए भी राजा हरिश्चन्द्र कठिन से कठिन परिस्थिति में अपने कर्त्तव्य का पूर्ण ध्यान रखते हैं। रानी शैव्या जब बिक जाती हैं तो वे उन्हें कर्त्तव्य का निर्देश देते हैं। श्मशान में महाविद्याएँ आती हैं, पर उन्हें वे विश्वामित्र के पास भेज देते हैं। 'रसेन्द्र' वे स्वयं न लेकर अपने स्वामी के पास भेजते हैं। दासरूप में उन्हें जो कुछ प्राप्त हो, वह सब कुछ स्वामी का है, यह बात उन्होंने सदा ध्यान में रखी। इसीलिए जब उन्हें 'रसेन्द्र' से स्वर्ण बनाकर अपना दास्य छुड़ाने की बात कही जाती है, तो वे तत्काल इसे अस्वीकार कर देते हैं।

चाण्डाल के हाथ बिक जाने पर भी राजा हरिश्चन्द्र को अपने वंश और गौरव का पूरा ध्यान है। उन्हें प्रसन्नता है कि बिक जाने पर भी उनका वचन पूरा हो गया। वे चाण्डाल की दासता श्मशान पर कफन कर लेकर अवश्य करते हैं, पर भोजन और निवास श्मशान से दूर जाकर करते हैं। शैव्या जब रोहिताश्व का शव लेकर श्मशान में रुदन करती है तो हरिश्चन्द्र का हृदय करुणा-पूर्ण हो जाता है। पर वे अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होते। बिना आधा कफन लिए अन्तिम क्रिया की आज्ञा नहीं देते और कफन के लिए हाथ फैला ही देते हैं। यहीं पर नाटक का चरम है और राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की अन्तिम परीक्षा। इतना ही नहीं, वरदान मांगने के लिए बाध्य किये जाने पर वे अपनी प्रजा का ध्यान सर्वप्रथम रखते हैं। इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल है। वे सत्यवीर और दानवीर होने के साथ साथ विनयशील और प्रजा-रञ्जन में दत्तचित्त रहने वाले कर्त्तव्यपरायण सम्राट् हैं जिनका पुण्यस्मरण भारतीयों का मस्तक सदा गर्व से उन्नत करता रहेगा।

शैव्या—शैव्या भारत की आदर्श कुलललना और कर्त्तव्यपरायणा महारानी हैं। स्त्रीत्व के जिन गुणों का चित्रण आप के चरित्र द्वारा हुआ है, वे

भारतीय नारी की अपनी विशेषनिधि रहे हैं। महारानी होते हुए भी उन्हें अभिमान छू तक नहीं गया है। वे पतिभक्ति को ही सब कुछ समझती हैं। पति के स्वप्न में राज्यदान को वे कुछ देर के लिये शंका की दृष्टि से देखती हैं, किन्तु राजा हरिश्चन्द्र के समझाने पर तत्काल अपनी भूल समझ जाती हैं। राजा हरिश्चन्द्र के बिकने के पूर्व वे अपने बेचे जाने का आग्रह कर, अर्द्धांगिनी की मर्यादा का पालन करती हैं। बिकने की शर्त में पर-पुरुष-सम्भाषण और जूठा भोजन न करने की बात वे स्वीकार करा लेती हैं। यही भारतीय नारी का भूषण और सर्वस्व है। पुत्र रोहिताश्व को जब ब्राह्मण बटु धक्का देता है तो उनका मातृत्व विचलित हो उठता है पर कर्त्तव्य तथा पति का आदेश उसे स्थिर कर देते हैं। विपत्ति पर विपत्ति आती है, पर वे अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होतीं। उनकी एकमात्र आशा और अवलम्ब रोहिताश्व को सर्प काट लेता है, वे शव लेकर श्मशान जाती हैं और करुण विलाप करती हैं। श्मशान पर कफन मांगने वाले राजा हरिश्चन्द्र को वे पहचान लेती हैं, पर उनके अटल आग्रह पर अधखुले शव से आधा कफन भी दे डालती हैं। शैव्या का चरित्र भारतीय नारी का आदर्श उपस्थित करता है। शैव्या धर्म और शास्त्र पर श्रद्धा रखने वाली हैं। पातिव्रत्य धर्म का मर्म समझकर उसका पालन करने वाली और संकट के समय भी कर्त्तव्य पर दृढ रहने वाली वे आदर्श भारतीय नारी हैं। शैव्या जैसी रानी के न रहने पर राजा हरिश्चन्द्र की सत्यवीरता और दानवीरता इतनी चमक पाती, इसमें सन्देह ही है।

रोहिताश्व—रोहिताश्व जिस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र का एकमात्र पुत्र और अवलम्ब है, उसी प्रकार उनकी सत्य तथा परीक्षा का आधार भी। रोहिताश्व ही नाटक में ऐसे स्थल उपस्थित करता है, जिनसे राजा हरिश्चन्द्र राजा हरिश्चन्द्र मालूम पड़ते हैं, अन्यथा वे देवता हरिश्चन्द्र लगते। माता को कहते सुनकर वह भी तोतली बोली में कहता है—'अमको बी कोई मोल ले तो बला उपकाल हो।' यह कथन रोहिताश्व के बालसुलभ स्वभाव का जहां चित्रण करता है, वहीं बालकों की अत्यन्त स्वाभाविक अनुकरण करने की वृत्ति का भी द्योतक है। रोहिताश्व को जब ब्राह्मण बालक धक्का देता है तो हरिश्चन्द्र और शैव्या के हृदय में झंझावात उठता है। यही अन्तर्द्वन्द्व इनके मानवीय स्वरूप का दर्शन कराता है।

राजा हरिश्चन्द्र तथा रानी शैव्या के सत्य की भी कसौटी वही है। सर्पदंश के बाद श्मशान में रोहिताश्व के अधखुले शव और कफन मांगने का स्थल ही सत्य की अन्तिम परीक्षा है और इसमें ही सफल होकर राजा हरिश्चन्द्र सत्यवादी तथा दानवीर कहे जाते हैं। रोहिताश्व न होता तो नाटक में इतने मार्मिक और विचलित कर देने वाले दृश्य ही उपस्थित न हो पाते।

विश्वामित्र—विश्वामित्र का चरित्र अत्यन्त क्रोधी मुनि का चरित्र है। उनके क्रोध और कटु शब्दों को सुनकर, उन्हें विश्वामित्र की अपेक्षा दुर्वासा ऋषि कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। इन्द्र से प्रोत्साहन पाकर विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र से सारी पृथ्वी दान में ले लेते हैं और दक्षिणा की मांग करते हैं। यह जानते हुए भी कि हरिश्चन्द्र सब कुछ दान दे चुके, उन्हें सत्यभ्रष्ट करने के लिए एक हजार स्वर्णमुद्रा दक्षिणा की मांग करते हैं। दक्षिणा में विलम्ब करने पर शाप की धमकी देने से भी ये नहीं चूकते। विश्वामित्र की कठोरता उस समय पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है, जब राजा हरिश्चन्द्र, चांडाल के हाथ न बिक कर, उनके दास बन कर रहने की प्रार्थना करते हैं। इस पर विश्वामित्र कहते हैं—'स्वयं दासास्तपस्विनः'—मुझे सेवक नहीं चाहिये। विश्वामित्र को राजा के प्रति जिस साधारण शिष्टाचार का पालन करना चाहिये, उनमें उसका भी अभाव है। बात-बात में जली-कटी बातें सुनाना पाठक और दर्शक को असह्य हो जाता है। बाह्यरूप से इतना होते हुए भी विश्वामित्र, भीतर से राजा हरिश्चन्द्र को महात्मा और महाशय मानने से अपने को नहीं रोक पाते। यहीं उनके क्रोध और कटु व्यवहार की हार है। अन्त में पाठक या दर्शक जब यह समझता है कि विश्वामित्र की सारी कटुता और क्रोध, हरिश्चन्द्र के सत्य-परीक्षण के लिए था तो उसे मौन रह जाना पड़ता है। विश्वामित्र का यह क्रोधी स्वभाव इसलिए भी अंकित किया गया है कि उसकी तुलना में हरिश्चन्द्र की नम्रता और दृढ़ता के रूप को अधिक उज्ज्वल रूप में चित्रित किया जा सके।

लक्ष्मीशंकर व्यास

उपक्रम[1]

मेरे प्रिय मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद सिंह बी० ए० ने मुझसे कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों के पढ़ने-पढ़ाने के योग्य हो, क्योंकि शृङ्गार रस के आपने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं, लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं के इच्छानुसार मैंने सत्यहरिश्चन्द्र नामक रूपक लिखा है। इसमें सूर्य्यकुलसंभूत राजा हरिश्चंद्र की कथा है। राजा हरिश्चंद्र सूर्य्यवंश का अट्ठाइसवाँ राजा रामचंद्र से ३५ पीढ़ी पहले त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और यह बड़ा ही दानी था। इसकी कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपाल देव के समय में आर्य क्षेमीश्वर कवि ने चंडकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चंद्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य ग्रंथ में इसका नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चंद्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। यह एक बेर संयोग से वसिष्ठ के आश्रम में गया और जब वसिष्ठ ने सेनासमेत उसकी जाफत अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूम-धाम से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और ऊँट के बदले भी वसिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वसिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना नाश कर दी और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वसिष्ठ ने श्राप से जला दिए। विश्वामित्र इस पराजय से उदास होकर तप करने लगे और महादेवजी से वरदान में

---

१. मूललेखककी भूमिका, जिसमें नाटक का पौराणिक–ऐतिहासिक आधार बताया गया है।

सब अस्त्र पाकर वसिष्ठ से लड़ने आये। वसिष्ठ ने मंत्र के बल से एक ऐसा ब्रह्मदंड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हारकर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप करके ब्राह्मण होना चाहिए और वे तप कर के अंत में ब्राह्मण और महर्षि हो गए। यह वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकांड के ५२ से ६० सर्ग तक सविस्तर वर्णित है।

जब हरिश्चंद्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वसिष्ठजी से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह अशक्य काम हमसे न होगा। तब त्रिशंकु वसिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उनसे भी कोरा जबाब पाया तब उसने कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं की और हमको कोरा जबाब दिया इससे अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वसिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चांडाल हो जा। बिचारा त्रिशंकु चांडाल बनकर विश्वामित्र के पास गया और उसने दुःखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने बैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोचकर राजा से प्रतिज्ञा की कि इसी देह से तुमको स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ कराना चाहा। सब ऋषि आए पर वसिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और उन्होंने कहा कि जहाँ चांडाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहाँ कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वसिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देखकर बिचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मंत्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञभाग लेने न आए तो विश्वामित्र ने क्रोध से स्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु, यज्ञ से कुछ काम नहीं तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आना चाहता है तो उसने पुकारा कि अरे तू यहाँ आने योग्य नहीं है, नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और उसने विश्वामित्र को त्राहि-त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तपोबल से उसको वहाँ बीच ही में स्थिर रक्खा।

कर्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नए बनाए और बहुत से जीव-जंतु फल-मूल बनाकर, इंद्रादि देवता भी दूसरे बनाने चाहे, तब देवता लोग डरकर इनसे क्षमा माँगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रखकर और दक्षिणाकाश में त्रिशकु को ग्रह की भाँति प्रकाशमान स्थिर रख क्षमा किया। यह सब भी रामायण ही में है। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा इससे अकाल पड़ा। विश्वामित्र एक चांडाल के घर भीख माँगने गए और जब कुत्ते का माँस पाया तो उसीसे देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इनके भय से काँप गए और इद्र ने उस समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांति-पर्व १४१ अध्याय में है। फिर हरिश्चंद्र की विपत्ति सुनकर क्रोध से वसिष्ठजी ने उनको शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुनकर वसिष्ठ को शाप दिया कि आड़ी हो जाओ। पक्षी बनकर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया जिसे त्रैलोक्य काँप गया। अंत में ब्रह्मा ने दोनों में मेल कराया। यह उपाख्यान मारकंडेय पुराण के नवें अध्याय में है। इनको उत्पत्ति यों है। भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याह किए देखा तो वे बड़े प्रसन्न हुए और बेटा-बहू देखने को उनके घर आए। उन दोनों ने पिता की पूजा की और वे हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी वर माँग। सत्यवती ने यह वर माँगा कि मुझे तो वेद-शास्त्र जाननेवाला और मेरी माता को युद्धविद्या-विशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कहकर ध्यान दे प्राणायाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए। भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वत्थ का आलिंगन करके खाय और तुम यह सफेद चरु उसी भाँति औदुंबर का आलिंगन करके खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कन्नौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी माता से सब कहा। उसकी माता ने यह समझ कर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरु दिया होगा, जब ऋतु-काल आया तो लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफेद आप खाया। भगवान

भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आकर बहू से कहा कि तुमने चरु को उलट-पलट किया इससे तुम्हारा लड़का ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय-कर्म्मा होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जायगा। सत्यवती ने जब ससुर से इस अपराध की क्षमा चाही तब उन्होंने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रियकर्म्मा होगा। उसी राजा गाधि को तो विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदग्नि और जमदग्नि को परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिका पुराण के ८४ अध्याय में स्पष्ट है।

इन उपाख्यानों के जानने से इस नाटक के पढ़नेवालों को बड़ी सहायता मिलेगी। इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व्वपुरुषों में महाराज हरिश्चंद्र भी थे, यह समझकर इस नाटक के पढ़ने वाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा।

समर्पण

नाथ !

यह एक नया कौतुक देखो। तुम्हारे सत्यपथ पर चलनेवाले कितना कष्ट उठाते हैं, यही इसमें दिखाया है। भला हम क्या कहें ? जो हरिश्चन्द्र ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करेगा। पर उस वंश ही के नाते इनको भी मानना। हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं पर तुम्हारी बहुत कुछ है। बस, इतना ही सही। लो सत्यहरिश्चंद्र तुम्हें समर्पित है, अंगीकार करो। छल मत समझना, सत्य का शब्द सार्थ है कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है।

तुम्हारा—

हरिश्चन्द्र

सत्यहरिश्चन्द्र

मङ्गलाचरण

सत्यासक्त[1] दयाल[2] द्विजप्रिय[3] अघहर[4] सुखकंद ।
जनहित कमलातजन[5] जय शिव[6] नृप[7] कवि[8] हरिचंद[9]* ॥ १ ॥

(नांदी[10] के पीछे सूत्रधार[11] आता है । †)

सू०—अहा ! आज की संध्या भी धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी इच्छा है कि हिन्दी भाषाका कोई नवीन नाटक देखें। धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक किस चिड़िया

---

* यह श्लेष शिवजी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चंद्रमा और कवि पाँच का वर्णन करता है ।

† सूत्रधार हरे वा नीले रंग की साटन का कामदार जाँघिया पहने, उसके आगे पटुके की तरह कमरबंद के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त, सामने बुताम की मिरजई, ऊपर माला वगैरह और सब गहने, सिर पर पिटारा, पैर में घुँघरू, हाथ में छड़ी, वा पैजामा, काछनी, सिर पर मुकुट ।

१ (क्रमशः पांचों पक्ष में) सती से प्रेम करनेवाले, सत्यवादी, सत्यभामा के प्रेमी, ताराप्रेमी । २ दया करने वाले । ३ द्विजन्मप्रिय, ब्राह्मणप्रिय । ४ पाप-दुःखादि दूर करने वाले ।

५ लक्ष्मी का त्याग । ६ शिवजी । ७ राजा हरिश्चन्द्र । ८ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

९ श्रीकृष्ण और चन्द्रमा । १० आशीर्वादात्मक पद्य जो नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार पढ़ता है । ११ नाटक का व्यवस्थापक ।

का नाम है इतना भी नहीं जानते थे, भला वहाँ अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त तो हुई। परन्तु हा! शोच की बात है कि जो बड़े बड़े लोग हैं और जिनके किए कुछ हो सकता है वे ऐसी अंधपरंपरा में फँसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी खैरख्वाही[1] दिखाना वा लंबा-चौड़ा गाल बजाना[2] आता है। (कुछ सोचकर) क्या हुआ ढंग पर चला जायगा तो यों भी बहुत कुछ हो रहेगा। काल बड़ा बली है, धीरे धीरे आप ही कर देगा। पर भला इन लोगों को लीला कौन सी दिखाऊँ (सोचकर) अच्छा, उन से भी तो पूछ लें? ऐसे कौतुकों[3] में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है (नेपथ्य[4] की ओर देखकर) मोहना! अपनी भाभी को जरा इधर तो भेजना। (नेपथ्य में से 'मैं तो आप ही आती थी' कहती हुई नटी आती है।*)

न०—मैं तो आप ही आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिए आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहे तो मैं और सभों से कहकर सावधान कर दूं।

सू०—आज का नाटक हमने तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है।

न०—हम लोगों को तो सत्यहरिश्चन्द्र आजकल अच्छी तरह याद है और उस का खेल भी सब छोटे बड़े को मँज रहा है।

सू०—ठीक है, यही हो। भला इस से अच्छा और कौन नाटक होगा। एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान[5] भी उस का करुणापूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उस का कवि भी हम लोगों का एकमात्र जीवन है।

न०—(लंबी साँस लेकर) हां! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी

---

* महाराष्ट्रीय भेष, कमर पर पेटी कसे वा मर्दाना कपड़ा पहिने, पर जेवर सब जनाने।

१ खुशामद। २ व्यर्थ की बातें। ३ आश्चर्य, खेल। ४ पात्र-पात्रियों के वेश-भूषा-परिवर्तनका स्थान। ५ कथा।

रूप गुण न समझा। क्या हुआ! 'कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछे प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी।'

सू०—इसमें क्या संदेह है। काशी के पंडितों ही ने कहा है—

सब[1] सज्जन के मान को, कारन इक हरिचंद।
जिमि सुभाव दिन-रैन के, कारन नित हरिचंद* ॥ २ ॥ †

और फिर उनके मित्र पंडित शीतलप्रसादजी ने इस नाटक के नायक से उनकी समता भी की है। इससे उनके बनाए नाटकों में भी सत्यहरिश्चन्द्र ही आज खेलने को जी चाहता है।

न०—कैसी समता, मैं भी सुनूँ।

सू०—[2]जो गुन नृप हरिचंद में, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिश्चन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान‡ ॥ ३ ॥

(नेपथ्य में)

अरे!

यहाँ सत्य-भय एक के, काँपत सब सुरलोक।
यह दूजो हरिचंद को, करन[3] इन्द्र-उर सोक ॥ ४ ॥

सू०—(सुनकर और नेपथ्य की ओर देखकर) यह देखो हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बनकर आ पहुँचा तो चलो अब हम लोग भी तैयार हों। (दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना[4]

---

* हरि = सूर्य्य।
† 'विद्वज्जनप्रतिष्ठाकारणमेवं हरिश्चन्द्रः।
यद्वत् स्वभावगत्या दिनराज्योर्वा हरिश्चन्द्रः॥'
‡ 'श्रूयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदाह्लादिनो गुणाः।
दृश्यन्ते ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने॥'

१ जिस प्रकार सूर्य-चन्द्र के कारण दिन-रात होते हैं उसी प्रकार सभी सज्जनों की प्रतिष्ठा के कारण हरिश्चन्द्र हैं। २ जो गुण राजा हरिश्चन्द्र में थे, वे सभी कवि हरिश्चंद्र में विद्यमान हैं। ३ उत्पन्न करने के लिए। ४ खेले जाने वाले नाटक की कथा का सूचक।

प्रथम अङ्क[1]

(जवनिका[2] उठती है)

(स्थान इन्द्रसभा, बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ)

(इन्द्र * आता है)

इ०—('यहाँ सत्य भय एक के' यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर उधर घूमता है ।)

(द्वारपाल † आता है)

द्वा०—महाराज ! नारदजी आते हैं ।

इ०—आने दो अच्छे अवसर पर आए ।

द्वा०—जो आज्ञा । (जाता है)

इ०—(आप ही आप) नारदजी सारी पृथ्वी पर इधर उधर फिरा करते हैं, इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा । हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि उसके धर्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिए ।

(नारदजी आते हैं ‡)

इ०—(हाथ जोड़कर दंडवत् करता है) आइये, आइये, धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़े ?

ना०—हमें और भी कोई काम है ? केवल यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ यही हमें है कि और भी कुछ ।

इ०—साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं, विशेष करके आप

---

* जामा, क्रीट, कुण्डल और गहने पहने हुए, हाथ में वज्र (कई फल का छोटा भाला) लिए हुए । † छज्जेदार पगड़ी, चपकन, घेरदार पाजामा पहने, कमरबंद कसे और हाथ में आसा लिए हुए । ‡ धोती की लाँग कसे, गाती बाँधे, सिरसे पाँव तक चन्दन का खौर दिये, पैर में घुँघरू, सिर के बाल छूटे और हाथ में बीन लिए हुए, आने और जाने के समय 'रामकृष्ण गोविन्द' की ध्वनि नेपथ्य में से हो ।

१. नाटक का एक भाग । नाटक में पाँच से दस अंक होते हैं । २. जवनिका, बाहरी पर्दा ।

ऐसे जो हमारे से दीन-गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं, क्योंकि जो लोग गृहस्थ और कामकाजी हैं कि वे स्वभाव ही से गृहस्थी के बंधनों में ऐसे जकड़ जाते हैं साधु संगम[१] तो उनको स्वप्न में भी दुर्लभ हो जाता है। न वे अपने प्रबन्धों[२] से छुट्टी पावेंगे न कहीं जायँगे।

ना०—आपको इतना शिष्टाचार[३] नहीं सोहाता। आप देवराज हैं और आप के संग की तो बड़े बड़े ऋषि मुनि इच्छा करते हैं, फिर आपको सत्संग कौन दुर्लभ है? केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुँहदेखा व्यापार[४] होता है वैसी ही बातें आप इस समय कर रहे हैं।

इ०—हमको बड़ा शोच है कि आपने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा। क्षमा कीजिए। आपसे हम बनावट नहीं करते। भला विराजिए तो सही। ये बातें तो होती ही रहेंगी।

ना०—विराजिए। (दोनों बैठते हैं)

इ०—कहिए इस समय कहाँ से आना हुआ?

ना०—अयोध्या से, अहा! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है। मैं तो उसके निष्कपट[५] और अकृत्रिम[६] स्वभाव से बहुत ही संतुष्ट हुआ। यद्यपि इसी सूर्य्यकुल में अनेक बड़े बड़े धार्मिक हुए पर हरिश्चंद्र तो हरिश्चंद्र[७] ही है।

इ०—(आप ही आप[८]) यह भी तो उसी का गुण गाते हैं।

ना०—महाराज! सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्ति[९] हैं। निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत-भूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊँचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी।

इ०—(आप ही आप) अहा! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनायी है। यद्यपि इसका स्वभाव सहज ही गुणग्राही हो तथापि दूसरों की उत्कट[१०] कीर्ति[११] से इसमें ईर्षा होती है। उसमें भी जो जितने बड़े हैं उनकी ईर्षा उतनी ही बड़ी है। हमारे ऐसे बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना सन्ताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्ति।

---

१ सत्संग। २ जंजाल। ३ दिखावटी व्यवहार। ४ बाहरी, कृत्रिम। ५ शुद्ध। ६ सहज। ७ बेजोड़। ८ स्वगत, मन में ही। ९ साकार स्वरूप। १० विशेष। ११ यश।

ना०—आप क्या सोच रहे हैं ?

इ०—कुछ नहीं। यों ही मैं यह सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्ति आजकल छोटे बड़े सब के मुँह से सुनाई पड़ती है, इससे निश्चय होता है कि नहीं हरिश्चन्द्र निस्सन्देह बड़ा मनुष्य है।

ना०—क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे बड़े सब मानें। और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा जो दृढ़ होकर धर्मसाधन[१] करेगा। (आप ही आप) और उसकी बड़ाई का यह भी तो एक प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उससे बुरा मानते हैं, क्योंकि जिस से बड़े-बड़े लोग डाह करें पर उसका कुछ बिगाड़ न सकें वह निस्सन्देह बहुत बड़ा मनुष्य है।

इ०—भला उसके गृह-चरित्र[२] कैसे हैं ?

ना०—दूसरों के लिये उदाहरण बनने के योग्य। भला पहिले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किये हैं उनकी और बातों पर क्या विश्वास हो सकता है। शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन से उपदेशक और क्रियादिक से कैसा भी धर्मनिष्ठ[३] क्यों न हो पर यदि उसके चरित्र शुद्ध नहीं हैं तो लोगों में वह टकसाल[४] न समझा जायगा और उसकी बातें प्रमाण न होंगी। महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन, वचन और कर्म एक रहते हैं, इनके भिन्न भिन्न। निस्सन्देह हरिश्चन्द्र महाशय है। उसके आशय[५] बहुत उदार हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।

इ०—भला आप उदार और महाशय किसको कहते हैं ?

ना०—जिसका भीतर बाहर एक सा हो और विद्यानुरागिता[६] उपकार-प्रियता[७] आदि गुण जिसमें सहज हों, अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य, संपत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिसकी स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है। हरिश्चन्द्र में ये सब बातें सहज हैं। दान करके उसको प्रसन्नता होती है और

---

१ धर्मकार्य। २ घरेलू आचरण। ३ धर्मपरायण। ४ सच्चा, आदर्श। ५ दृष्टिकोण। ६ सरस्वती से प्रेम। ७ भलाई करने की वृत्ति।

कितना ही दे पर सन्तोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी कुछ दिया ही नहीं।

इ०—(आप ही आप) हृदय पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो।

ना०—और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चल[1] भक्ति उसमें ऐसी है जो सबका भूषण[2] है, क्योंकि उसके बिना किसी की शोभा नहीं। फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को सन्देह होता है कि इन्हें राजकाज देखने की छुट्टी कब मिलती है। सच है, छोटे जी के लोग थोड़े ही कामों में ऐसे घबड़ा जाते हैं मानों सारे संसार का बोझ उन्हीं पर है। पर जो बड़े लोग हैं उनके सब काम महारम्भ[3] होते हैं तब भी उनके मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उनके उदार चित्त में धैर्य्य और अवकाश[4] बहुत है, दूसरे उनके समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथा योग्य बँटे रहते हैं जिससे उन पर कभी भीड़[5] पड़ती ही नहीं।

इ०—भला महाराज। वह ऐसे दानी हैं तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर है?

ना०—यही तो हम कहते हैं। निस्सन्देह वह राजा कुल का कलंक है जिसने बिना पात्र[6] विचारे दान देते देते सब लक्ष्मी का क्षय[7] कर दिया, आप कुछ उपार्जन[8] किया ही नहीं, जो था वह नाश हो गया! और जहां प्रबन्ध[9] है वहाँ धन की क्या कमी है? मनुष्य कितना धन देगा और याचक[10] कितना लेंगे।

इ०—पर यदि कोई अपने बित्त[11] के बाहर माँगे या ऐसी वस्तु माँगे जिससे दाता की सर्वस्व-हानि होती हो तो वह दे कि नहीं?

ना०—क्यों नहीं। अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए। जिसको धन पाकर सत्पात्र में उसके त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहाँ हुआ।

---

१ अटल। २ सिरताज। ३ बड़े। ४ जगह। ५ कठिनाई। ६ योग्य-अयोग्य। ७ नष्ट। ८ अर्जन। ९ व्यवस्था। १० मांगने वाले। ११ शक्ति।

इ०—(आप ही आप) भला देखेंगे न।

ना०—राजन्! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु नहीं है। वे तो अपने सहज स्वभाव ही से सत्य और विचार तथा दृढ़ता में ऐसे बँधे हैं कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उनको स्वर्ण का पर्वत भी तिल-सा दिखाई देता है और उसमें भी हरिश्चन्द्र—जिसका सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी और तलवार पर भी नहीं है। जो सत्यानुरागी ही नहीं है भला उससे न्याय कब होगा और जिसमें न्याय नहीं है वह राजा काहे का है। कैसी भी विपत्ति और उभय-संकट[1] में पड़े और कैसी ही हानि वा लाभ हो पर जो न्याय न छोड़े वही धीर और वही राजा। और उस न्याय का मूल सत्य है।

इ०—तो भला वह जिसे जो देने को कहेगा वह देगा वा जो करने को कहेगा वह करेगा?

ना०—क्या आप उसका परिहास[2] करते हैं? किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उसकी निन्दा है। क्या आपने उसका यह सहज साभिमान वचन नहीं सुना है?

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्य विचार[3]॥ ५॥

इ०—(आप ही आप) तो फिर उसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हमको भी अच्छा उपाय मिला। (प्रगट) हाँ पर आप यह भी जानते हैं कि वह धर्म स्वर्ग लेने को करता है।

ना०—वाह! भला जो ऐसे हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है? क्या बड़े लोग धर्म स्वर्ग पाने को करते हैं? जो अपने निर्मल चरित्र से सन्तुष्ट हैं उनके आगे स्वर्ग कौन वस्तु है? फिर भला जिनके शुद्ध हृदय और सहज व्यवहार हैं वे क्या यश वा स्वर्ग के लालच में धर्म करते हैं? वे तो आपके स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं और

---

१ धर्मसंकट। २ मजाक। ३ चाहे जो हो जाय किन्तु हरिश्चन्द्र का दृढ़ निश्चय कभी टल नहीं सकता।

जिन लोगों को भगवान के चरणारविन्द में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्माचरण[1] करते हैं। यह भी तो क्षुद्रता[2] है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना।

इ०—(आप ही आप) हमने माना कि उसकी स्वर्ग लेने की इच्छा न हो तथापि अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायगा।

ना०—और जिनको अपने किये शुभ अनुष्ठानों[3] से आप सन्तोष मिलता है उनके उस असीम आनन्द के आगे आपके स्वर्ग का अमृत-पान और अप्सरा तो महामहातुच्छ हैं। क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं?

इ०—तथापि एक बार उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।

ना०—राजन्! आपका यह सब सोचना बहुत अयोग्य[4] है। ईश्वर ने आपको बड़ा किया है तो आपको दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर संतोष करना चाहिए। ईर्षा करना तो क्षुद्राशयों[5] का काम है। महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझे।

इ०—(आप ही आप) इन से काम न होगा। (बात बहलाकर प्रगट) नहीं नहीं मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उनके गुणों को अपनी आँखों से देखता। भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूँ जिससे उन्हें कष्ट हो।

ना०—(आप ही आप) अहा! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा है। अधिकार तो बड़ा है पर जिसके चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझी करती हैं, वह अ दर के योग्य नहीं है; परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर उसका चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है।

(द्वारपाल आता है)

द्वा०—महाराज, विश्वामित्र जी आये हैं।

इ०—(आप ही आप) हाँ, इनसे यह काम होगा। अच्छे अवसर

---

१ धर्मकार्य। २ ओछापन। ३ कार्यों। ४ अनुचित। ५ नीचों।

पर आये। जैसा काम हो वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिए। (प्रगट) हाँ हाँ लिवा लाओ।

द्वा०—जो आज्ञा। (जाता है)

(विश्वामित्रजी* आते हैं)

इ०—(प्रणामादि शिष्टाचार करके) आइए भगवन् विराजिये।

वि०—(नारद जी को प्रणाम करके और इन्द्र को आशीर्वाद देकर बैठते हैं)

ना०—तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम से जाना है।

वि०—यह क्या ? हमारे आते ही आप चले, भला ऐसी रुष्टता[1] किस काम की ?

ना०—हरे हरे ! आप ऐसी बात सोचते हैं—राम राम ! भला आपके आने से हम क्यों जायँगे ? मैं तो जाने ही को था कि इतने में आप आ गये।

इ०—(हँसकर) आपकी जो इच्छा।

ना०—(आप ही आप) हमारी इच्छा क्या ? अब तो आप ही की यह इच्छा है कि हम जायँ, क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्र[2] जी से राजा हरिश्चन्द्र को दुःख देने की सलाह कीजिएगा तो हम उसके बाधक क्यों हों। पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं उतनी ही उनकी सत्यकीर्ति[3] तपाये सोने की भाँति और भी चमकती है क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती। (प्रगट) यद्यपि 'जो इच्छा' आपने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन[4] वचन नहीं कहते क्योंकि इन वाक्यों से रूखापन झलकता है। मैं कुछ उसका ध्यान नहीं करता केवल मित्रभाव से कहता हूँ। लो जाता हूँ और यही आशीर्वाद देकर जाता हूँ कि तुम

---

* मृगचर्म, दाढ़ी, जटा, हाथों में पवित्री और कमण्डल, खड़ाऊँ पर चढ़े।

१ नाराजगी। २ दुश्मन। ३ उज्ज्वल यश। ४ रूखे।

किसी को कष्टदायक मत हो क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है।

इ०—(कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता)

(नारद जी जाते हैं)

वि०—यह क्यों ? आज नारद भगवान् ऐसी जली कटी[१] क्यों बोलते थे, क्या तुमने कुछ कहा था ?

इ०—नहीं तो, राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग[२] निकला था सो उन्होंने उस की बड़ी स्तुति[३] की और हमारा उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस पर कीर्ति[४] को सहन न कर सका, इसमें कुछ बात ही बात ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गये।

वि०—तो हरिश्चन्द्र में कौन-से ऐसे गुण हैं ?

(सहज ही भृकुटी चढ़ जाती है)

इ०—(ऋषि का भ्रूभंग[५] देखकर चित्त में सन्तोष करके उनका क्रोध बढ़ाता हुआ) महाराज, सिपारसी[६] लोग चाहे जिसको बढ़ा दें, चाहे घटा दें। भला सत्य धर्म-पालन क्या हँसी-खेल है। यह आप ऐसे महात्माओं का ही काम है जिन्होंने घर-बार छोड़ दिया है। भला राज करके और घर में रह के मनुष्य क्या धर्म का हठ करेगा ? और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ता। इन्हीं बातों से तो नारदजी बिना बात ही अप्रसन्न हुए।

वि०—मैं अभी देखता हूँ न। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट[७] न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपने[८] का अभिमान करेगा ?

(क्रोधपूर्वक उठकर चला चाहते हैं कि परदा गिरता है)

इति प्रथम अङ्क

---

१ बुरी-भली। २ चर्चा। ३ प्रशंसा। ४ दूसरे का यश। ५ क्रोध से भौंह तनना। ६ झूठे प्रशंसक। ७ तेजरहित। ८ दानवीरता।

दूसरा अङ्क

(स्थान—राजा हरिश्चन्द्र का राजभवन)

(रानी शैव्या* बैठी हैं और सहेली† बगल में खड़ी है)

रा०—अरी ! आज मैंने ऐसे बुरे बुरे सपने देखे हैं कि जब से सो के उठी हूँ कलेजा काँप रहा है भगवान् कुशल करें।

स०—महाराज के पुण्य प्रताप से सब कुशल ही होगा। आप कुछ चिन्ता न करें। भला क्या सपना देखा है मैं भी सुनूँ ?

रा०—महाराज को तो मैंने सारे अङ्ग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले और (आँखों में आँसू भरकर) रोहिताश्व को देखा है कि उसे साँप काट गया है।

स०—राम ! राम ! भगवान् सब कुशल करेगा। भगवान् करे रोहिताश्व जुग जुग जिये और जब तक गंगा यमुना में पानी है आपका सोहाग[१] अचल रहे। भला आपने इसकी शान्ति[२] का भी कुछ उपाय किया है।

रा०—हाँ, गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है, देखूँ वे क्या करते हैं।

स०—हे भगवान्, हमारे महाराज, महारानी, कुँवर सब कुशल से रहें, मैं आँचल पसार के यह वरदान माँगती हूँ।

(ब्राह्मण‡ आता है)

ब्राह्मण—(आशीर्वाद देता है)

स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु।
ऐश्वर्यमस्तु कुशलोस्तु रिपुक्षयोस्तु सन्तानवृद्धिसहिता हरिभक्तिरस्तु ॥१॥

रा०—(हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)

ब्रा०—महारानी, गुरुजी ने यह अभिमन्त्रित[३] जल भेजा है, इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान भी कर

---

* लहँगा; साड़ी, सब जनाना गहना, बन्दी, बेना इत्यादि। † साड़ी, सादा सिंगार। ‡ धोती, उपरना सिर पर चुंदी वा सिर पर बाल, दाढ़ी, हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाऊँ।

१ अखण्ड सौभाग्य। २ निराकरण। ३ मन्त्र से पवित्र।

लें और रक्षाबंधन[1] भेजा है, इसे कुमार रोहिताश्व की दाहिनी भुजा पर बाँध दें, फिर इस जल से मैं मार्जन[2] करूँगा।

रा०—(नेत्र में जल लगा कर कुछ मुंह फेर कर आचमन करके) मालती! यह रक्षाबंधन तू सम्हाल के अपने पास रख। जब रोहिताश्व मिले उस के दाहिने हाथ पर बाँध दीजियो।

स०—जो आज्ञा। (रक्षाबंधन अपने पास रखती है)

ब्रा०—तो आप सावधान हो जायँ, मैं मार्जन कर लूँ।

रा०—(सावधान होकर) जो आज्ञा।

ब्रा०—(दूर्वा[3] से मार्जन करता है)

देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
गन्धर्व्वाः किन्नरा नागा रक्षां कुर्व्वन्तु ते सदा ॥ २ ॥
पितरो गुह्यका यक्षाः देव्यो भूताश्च मातरः।
सर्व्वे त्वामभिषिञ्चन्तु रक्षां कुर्व्वन्तु ते सदा ॥ ३ ॥
भद्रमस्तु शिवञ्चास्तु महालक्ष्मीः प्रसीदतु।
पतिपुत्रयुता साध्वि! जीव त्वं शरदां शतम् ॥ ४ ॥

(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंक कर)

यत्पापं रोगमशुभं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु ॥ ५ ॥

(फिर रानी पर मार्जन करके)

यन्मंगलं शुभं सौभाग्यं धनधान्यमारोग्यं बहु।
पुत्रत्वं तत्सर्व्वमीशप्रसादात् ब्राह्मणवचनात् त्वय्यस्तु ॥ ६ ॥

(मार्जन करके फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है)

रा०—(हाथ जोड़ कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज गुरुजी से मेरी ओर से विनती करके दंडवत कह दीजिएगा।

ब्रा०—जो आज्ञा। (आशीर्वाद देकर जाता है)

रा०—आज महाराज अब तक सभा में नहीं आये ?

स०—अब आते होंगे, पूजा में कुछ देर लगी होगी।

---

१ रक्षार्थ मन्त्र का सूत्र। २ जल का छींटा। ३ हरी दूब।

(नेपथ्य में वैतालिक[1] गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रवि कुल-रवि[2] निशि बीती प्रजा-कमलगन फूले।
मंद परे निपुगन[3] तारा सम जन-भय-तम उनमूले॥
नसे चोर लंपट खल[4] लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध बंदी सूत[5] चिरैयन मिलि कलरोर मचायो॥
तुव जस सीतल पौन परसि चटकीं गुलाब की कलियाँ।
अति सुख पाइ असीस देत सोइ करि अँगुरिन चट अलियाँ॥
भए धरम मैं थित[6] सब द्विजजन प्रजा काज निज लागे।
रिपु जुवती मुख कुमुद मंद जन चक्रवाक[7] अनुरागे॥
अरघ सरिस उपहार लिये नृप ठाढ़े तिन कहँ तोखौ[8]।
न्याय कृपा सों ऊँच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ[9]॥ ६॥

(नेपथ्य में से बाजे की धुन सुन पड़ती है)

रा०—महाराज ठाकुरजी के मंदिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बंदी लोग भी जाते आते हैं।

स०—आप कहती हैं चले ? वह देखिये, आ पहुँचे कि चले।

रा०—(घबड़ा कर आदर के हेतु उठती है)

(परिकर* सहित महाराज हरिश्चंद्र† आते हैं।)

(रानी प्रणाम करती हैं और सब लोग यथास्थान बैठते हैं।)

ह०—(रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचंद्र मलिन क्यों हो रहा है ?

---

*राजा के परिकर में प्रथम मंत्री, नीमा, पैजामा, कमरबंद, दुशाला, पगड़ी, सिरपेंच सजे। दो मुसाहिब साधारण सभ्यों के वेष में। एक निशानवाला सेवक के भेष में। निशान पर सूर्य के नीचे 'सत्ये नास्ति भयं क्वचित्' लिखा हुआ। चार शस्त्रधारी अंगरक्षक। दो सेवक।

†सफेद या केसरी जामा, पैजामा, कमरबंद, मर्दाना सब गहना, सिर पर किरीट वा पगड़ी, सिरपेंच, तुर्रा, हाथ में तलवार, दुशाला या कोई चमकता रूमाल ओढ़े।

१ स्तुति पाठ करने वाले। २ सूर्यवंश के सूर्य। ३ शत्रु। ४ दुष्ट। ५ वंशावली-यशगाने वाले, चारण। ६ स्थित। ७ चकवा चकई। ८ सन्तुष्ट। ९ पोषण।

रा०—पिछली रात मैंने कुछ दुःस्वप्न[1] ऐसे देखे हैं जिन से चित्त व्याकुल हो रहा है।

ह०—प्रिये ! स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु[2] होता है पर तुम तो वीरकन्या, वीरपत्नी और वीरमाता हो। तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ?

रा०—नाथ ! मोह से धीरज जाता रहता है।

ह०—तो गुरुजी से कुछ शांति करने को नहीं कहलाया ?

रा०—महाराज ! शांति तो गुरुजी ने कर दी है।

ह०—तब क्या चिन्ता है ? शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो, सब कल्याण होगा। सदा सर्वदा सहज मंगलसाधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी[3] ईश्वर की इच्छा ही समझ के संतोष करना चाहिए।

रा०—महाराज, स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने भी ग्रंथों में देखा है ?

ह०—(रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है, (चिंतापूर्वक स्मरण करके) हाँ, यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्या-साधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं[4] को खींचता है और जब मैं स्त्री जानकर उनको बचाने गया हूँ तो वह मुझ से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य माँगा है। मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया।

(इतना कह कर अत्यंत व्याकुलता नाट्य[5] करता है)

रा०—नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गये ?

ह०—मैं यह सोचता हूँ कि अब उस ब्राह्मण को कहाँ पाऊँगा और बिना उसकी थाती[6] उसे सौंपे भोजन कैसे करूँगा ?

रा०—नाथ ! क्या स्वप्न के व्यवहार[7] को भी आप सत्य मानिएगा ?

ह०—प्रिये ! हरिश्चंद्र की अर्धांगिनी[8] होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित

---

१ बुरे स्वप्न। २ डर जाने वाला। ३ मात्र। ४ तंत्रशास्त्र की दस सिद्ध देवियाँ। ५ भावप्रदर्शन। ६ धरोहर। ७ घटना। ८ धर्मपत्नी।

नहीं है। हाँ! भला तुम ऐसी बात मुँह से निकालती हो? स्वप्न किसने देखा है? मैंने न? फिर क्या? स्वप्नसंसार अपने काल में असत्य है इस का कौन प्रमाण है? और जो असत्य कहो तो मरने के पीछे इस संसार में परलोक के हेतु लोग धर्माचरण क्यों करते हैं? दिया सो दिया? क्या स्वप्न में क्या प्रत्यक्ष।

रा०—(हाथ जोड़ कर) नाथ! क्षमा कीजिए, स्त्री की बुद्धि ही कितनी।

ह०—(चिंता करके) पर मैं अब करूँ क्या? अच्छा, प्रधान! नगर में डौंडी[1] पिटवा दो कि राज्य को सब लोग आज से अज्ञात-नाम-गोत्र[2] ब्राह्मण का समझें। उस के अभाव में हरिश्चंद्र उसके सेवक की भांति उसकी थाती समझ के राजकार्य करेगा और दो मोहर राजकाज के हेतु बनवा लो। एक पर अज्ञात-नाम-गोत्र-ब्राह्मण-सेवक हरिश्चन्द्र और दूसरे पर राजाधिराज अज्ञातनाम-गोत्र ब्राह्मण महाराजा खुदा रहे और आज से राजकाज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे। देश के राजाओं और बड़े-बड़े कार्याधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञात-नाम-गोत्र-ब्राह्मण को पृथ्वी दी है, इससे आज से उनका राज्य हरिश्चन्द्र मंत्री की भाँति सम्हालेगा।

(द्वारपाल आता है)

द्वा०—महाराजाधिराज! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ ही हम लोगों को गाली देता है।

ह०—(घबड़ाकर) अभी आदरपूर्वक ले आओ।

द्वा०—जो आज्ञा। (जाता है)

ह०—यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात है।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्रजी* आते हैं)

ह०—(आदरपूर्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज! पधारिए, यह आसन है।

---

* जटा और दाढी बढ़ाए, खड़ाऊँ पहने, गले में मृगछाला बाँधे, धोती पर बाघ की मोटी करधनी, एक हाथ में कुश और कमंडल।

१ मुनादी। २ जिसके नाम-गोत्र का पता नहीं।

त्रि०—बैठे, बैठ चुके, बोल अभी तैंने मुझे पहिचाना कि नहीं?

ह०—(घबड़ाकर) महाराज! पूर्वपरिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

वि०—(क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम[1]! तू काहे को पहिचानेगा। सच है रे सूर्यकुलकलंक, तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार तेरे मिथ्या धर्माभिमान को। ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट, तैं भूल गया, कल पृथ्वी किसको दान दी थी? जानता नहीं कि मैं कौन हूँ।

जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकविप्रं दृप्यद्वसिष्ठसुतकाननधूमकेतुम्।
सर्गान्तराहरणभीतजगत्कृतान्तं चाण्डालयाजिनमिवैषि न कौशिकं माम्॥

ह०—(पैरों पर गिर के बड़े विनय से) महाराज! भला आप को त्रैलोक्य में ऐसा कौन है, जो न जानेगा?

'अन्नक्षयादिषु तथाविहितात्मवृत्तिं राजप्रतिग्रहपराङ्मुखमानसं त्वाम्।
आडीवकप्रधनकम्पितजीवलोकं कस्तेजसां च तपसां च निधिं न वेत्ति'॥

वि०—(क्रोध से) सच है रे पाप पाषंड[2], मिथ्या दानवीर! तू क्यों न मुझे 'राजप्रतिग्रहपराङ्मुख[3]' कहेगा क्योंकि तैंने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान न दी है। ठहर, ठहर, देख, इस झूठ का कैसा फल भोगता है। हा! इसे देखकर क्रोध से जैसे मेरी दाहिनी भुजा शाप देने के लिये उठती है, वैसे ही जातिस्मरण के संस्कार से बाईं भुजा फिर से कृपाण[4] धारण किया चाहती है। (अत्यन्त क्रोध से लंबी साँस लेकर और बाँह उठाकर) अरे ब्रह्मा! सम्हाल अपनी सृष्टि को, नहीं तो परम तेजःपुंज[5] दीर्घतपोवर्धित[6] मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जायगा। अथवा संसार के नाश ही से क्या? ब्रह्मा का तो गर्व उसी दिन मैंने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई। आज इस राजकुलांगार[7] का अभिमान चूर्ण करूँगा जो मिथ्या[8] अहंकार के बल से जगत् में दानी प्रसिद्ध हो रहा है।

ह०—(पैरों पर गिर के) महाराज! क्षमा कीजिए, मैंने इस बुद्धि से

---

१ क्षत्रियों में नीच। २ अभिमानी। ३ राजाओं से दान न लेनेवाला। ४ तलवार। ५ तेज समूह। ६ अत्यधिक तपस्या से अधिक हुआ। ७ राजकुल का नाशक। ८ असत्य।

नहीं कहा था। सारी पृथ्वी आपकी, मैं आपका, भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकालते हैं। (ईषत्[1] क्रोध से) और आप बारंबार मुझे झूठा न कहिए। सुनिए मेरी यह प्रतिज्ञा है—

'चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत् व्योहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचंद को, टरै न सत्य विचार'॥ ७॥

वि०—(क्रोध और आनन्दपूर्वक हँस कर) हहहह! सच है, सच है रे मूढ़! क्यों नहीं, आखिर सूर्यवंशी है। तो दे हमारी पृथ्वी।

ह०—लीजिये, इसमें विलंब क्या है? मैंने तो आपके आगमन के पूर्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है। (पृथ्वी की ओर देखकर)

जेहि पाली इक्ष्वाकु[2] सों, अब लौं रविकुलराज[3]।
ताहि देत हरिचंद नृप, विश्वामित्रहिं आज॥ ८॥
वसुधे[4]! तुम बहु सुख कियो, मम पुरुषन की होय।
धरमबद्ध हरिचंद को, क्षमहु सु परबस जोय॥ ६॥

वि०—(आप ही आप) अच्छा! अभी अभिमान दिखा ले। तो मेरा नाम विश्वामित्र जो तुझको सत्यभ्रष्ट[5] करके छोड़ा और लक्ष्मी से तो हो ही चुका है (प्रगट) स्वस्ति[6]। अब इस महादान की दक्षिणा कहाँ है?

ह०—महाराज! जो आज्ञा हो वह अभी आती है।

वि०—भला सहस्र स्वर्णमुद्रा[7] से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी?

ह०—जो आज्ञा। (मंत्री से) मंत्री! हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ।

वि०—(क्रोध से) 'मंत्री! हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ।' मंत्री कहाँ से लावेगा? क्या अब खजाना तेरा है? झूठा कहीं का, देना ही नहीं था तो मुँह से कहा क्यों? चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

ह०—(हाथ जोड़कर विनय से) महाराज ठीक है। खजाना अब सब

---

१ तनिक। २ सूर्यवंश के आदि राजा। ३ सूर्यवंश का राज्य। ४ पृथ्वी। ५ सत्य से विमुख। ६ कल्याण हो। ७ सोने का सिक्का।

आपका है। मैं भूला, क्षमा कीजिए। क्या हुआ, खजाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है।

वि०—एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदंड[1] गिराऊंगा। देख, केवल एक मास की अवधि है।

ह०—महाराज! मैं ब्रह्मदंड से उतना नहीं डरता जितना सत्यदंड से। इससे—

बेचि देह दारा[2] सुअन[3], होइ दासहू मंद[4]।
रखि है निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचंद ॥ १० ॥

(आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है)

(जवनिका गिरती है)

इति दूसरा अङ्क।

तीसरे अङ्क में अङ्कावतार[5]

स्थान-वाराणसी का बाहरी प्रांत—तालाब

(पाप* आता है)

पा०—(इधर उधर दौड़ता और हाँफता हुआ) मरे रे मरे, जले रे जले, कहाँ जायँ, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर नहीं सकते। सुना है कि राजा हरिश्चन्द्र काशी गये हैं क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हमको तुमने दान दे दी है इससे पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेचकर हम से उऋण[6] नहीं हो सकते। यह बात जब राजा हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत घबराये और सोच विचारकर उन्होंने कहा कि

* काजल-सा रंग, लाल नेत्र, महाकुरूप; हाथ में नंगी तलवार लिये, काछा काछे।

१ ब्रह्मकोप। २ स्त्री। ३ बच्चे। ४ नीच। ५ अंक के अन्त में, अगले अंक के अभिनय का पूर्व सूचक। ६ कर्ज से छुटकारा।

बहुत अच्छा ! महाराज हम काशी में अपना शरीर वेचेंगे क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है। यह सुनकर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलें क्योंकि जहाँ हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहाँ हमारे प्राण बचेंगे, सो यहाँ और भी उत्पात हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानों जड़ ही खोद डालेंगे। रात-दिन शंख घंटे की घनघोर[1] के साथ वेद की धुनि मानों ललकार ललकार के हमारे शत्रु धर्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो, भगवती भागीरथी[2] के जलकण मिले वायु से उसका हृदय एक साथ ही शीतल हो जाता है। इसके उपरान्त शि शि शि[3] ध्वनि अलग मारे डालती है। हाय कहाँ जायँ, क्या करें ? हमारी तो संसार में मानों जड़ ही कटी जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है पर यहाँ तो मानों हमारा राज ही नहीं। कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहाँ आया कि गति[4] भई।

(नेपथ्य में)

सच है 'येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः'[5]

पा०—अरे रे ! कौन महा भयंकर भेष, अंग में भभूत पोते, एड़ी तक जटा लटकाये, लाल लाल आँख निकाले, साक्षात् काल की भाँति त्रिशूल घुमाता चला आता है। प्राण, तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल में। अब इस समय भूमंडल[6] में तुम्हारा ठिकाना लगँना कठिन ही है।

(भागता हुआ जाता है)

(भैरव*आते हैं)

---

* महादेवजी का-सा सिंगार, तीन नेत्र, नीला रंग, एक हाथ में त्रिशूल दूसरे हाथ में प्याला।

१ ध्वनि। २ गंगाजी। ३ शिव-शिव। ४ मुक्ति। ५ काशी में सब के लिए स्थान है। ६ पृथ्वी। ७ स्थान मिलना।

भैरव—सच है 'येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः' देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चंद्र भी अपनी आत्मा और स्त्री पुत्र बेचने को यहीं आया है। अहा धंन्य है सत्य। आज जब भगवान् भूतनाथ[१] राजा हरिश्चंद्र का वृत्तांत भवानी[२] से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गये और रोमांच होने से सब शरीर के भस्मकण अलग अलग हो गये। मुझको आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष[३] रूप से तुम सर्वदा राजा हरिश्चंद्र की अंगरक्षा[४] करना। इससे चलूं मैं भी भेस बदलकर भगवान् की आज्ञा पालन में प्रवृत्त होऊँ।

(जाते हैं। जवनिका गिरती है)

तीसरे अङ्क में यह अङ्कावतार समाप्त हुआ।

तीसरा अङ्क

(स्थान—काशी के घाट किनारे की सड़क)

(महाराज हरिश्चंद्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं।)

ह०—देखो काशी भी पहुंच गये! अहा! धन्य है काशी! भगवति वाराणसी! तुम्हें अनेक प्रणाम हैं। अहा! काशी की कैसी अनुपम शोभा है।

'चारहु आश्रम बर्न[५] बसैं, मनि कंचन धाम अकास विभासिका[६]।
सोभा नहीं कहि जाय कछू विधि नै रची मानो पुरीन की नासिका[७]॥
आपु बसै गिरिधारन जू तट देवनदी[८] बर बारि बिलासिका।
पुन्य प्रकासिका पाप बिनासिका हीय हुलासिका सोहत कासिका[९]'॥११॥

'बसै बिंदुमाधव बिसेसरादि देव सबै दरसन ही तें लागै जम[१०] मुख मसी[११] है। तीरथ अनादि पंचगंगा मनिकर्निकादि सात आवरण[१२] मध्य पुन्य रूप धँसी है॥ गिरधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी धार

१ शङ्कर। २ पार्वती। ३ गुप्त। ४ शरीररक्षा। ५ चारो वर्ण। ६ आकाश में शोभित। ७ पुरियों में सर्वश्रेष्ठ। ८ गंगा। ९ काशी। १० यम। ११ कालिमा। १२ सात घेरे।

तोरै आसु[1] कर्मरूप रसी है। ससी सम जसी असी वरना में बसी[2] पाप खसी[3] हेतु असी ऐसी लसी वाराणसी है' ॥ १२ ॥

'रचित प्रभासी[4] भासी अवलि मकानन की जिनमें अकासी फबैं रतन नकासी है। फिरैं दास दासी विप्र गृही औ संन्यासी लसैं बर गुन-रासी देवपुरीहू न जा-सी है। गिरिधरदास विस्वकीरति बिलासी रमा हासी[5] लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है। खासी परकासी पुनवासी चंद्रिका-सी जाके बासी अबिनासी अघनासी[6] ऐसी कासी है' ॥ १३ ॥

देखो, जैसा ईश्वर ने यह सुन्दर अँगूठी के नगीने-सा नगर बनाया है वैसी ही नदी भी इसके वास्ते दी है। धन्य गंगे !

'जम की सब त्रास बिनास करी मुख ते निज नाम उचारन में।
सब पाप प्रतापहि दूरि दर्‌यौं[8] तुम आपन आप निहारन में ॥
अहो गंग अनंग के शत्रु[9] करे बहु नेकु जलै मुख डारन में।
गिरिधारनजू कितने बिरचे गिरिधारन धारन[10] धारन में' ॥ १४ ॥ ❀

कुछ माहात्म्य ही पर नहीं, गंगाजी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है ! अहा !

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक-सी[11] सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति ॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि[12] आवत।
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत ॥ १५ ॥
सुभग स्वर्ग सोपान[13] सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिबिध[14] भय दूर मिटावत ॥
श्रीहरिपद[15]-नख-चंद्रकान्तमनि-द्रवित[16] सुधारस।[17]

❀ ये चारो छंद ग्रंथकर्त्ता के पिता श्री बाबू गोपालचंद्र के बनाये हैं जो कविता में अपना नाम गिरधरदास रखते थे।

१ तत्काल। २ अस्सी वरणा के बीच। ३ वकरे। ४ ज्योति-सी। ५ लक्ष्मी की हंसी। ६ पाप भक्षक। ७ भय। ८ हटाया। ९ महादेव। १० स्नान के फल से विष्णु। ११ हीरा जैसी। १२ इस प्रकार। १३ स्वर्ग की सीढ़ी। १४ तीनों ताप। १५ विष्णुचरण। १६ चन्द्रमा देख पिघलने वाली। १७ अमृत।

ब्रह्म-कमंडल-मंडन[1] भव-खंडन[2] सुर-सरबस[3] ॥ १६ ॥
सिवा सिर मालती माल भगीरथ नृपति पुन्य फल ।
ऐरावत गज गिरिपति हिमनग[4] कंठहार कल ॥
सगर सुवन सठ सहस[5] परस जल मात्र उधारण ।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारण[6] ॥ १७ ॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई ।
सपनेहूँ नहिं तजी रही अंकम लपटाई ॥
कहूँ बँधे नवघाट उच्च गिरिवर[7] सम सोहत ।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ॥ १८ ॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा-पताका ।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा[8] करि साका[9] ॥
मधुरी नौबत बजति कहूँ नारी-नर गावत ।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ॥ १९ ॥
कहुँ सुंदरी नहात नीर कर युगल उछारत ।
जुग अंबुज[10] मिलि मुक्त-गुच्छ[11] मनु सुच्छ निकारत ॥
धोअत सुंदरि बदन[12] करन अति ही छबि पावत ।
बारिधि नाते[13] ससि कलंक मनु कमल[14] मिटावत ॥ २०॥
सुंदरि ससिमुख[15] नीर मध्य इमि सुंदर सोहत ।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहीं जहँ जाति रहति तितिही ठहराई ।
गंगा छबि हरिचंद कछू बरनी नहिं जाई ॥ २१ ॥

(कुछ सोच कर) पर हा ! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है—

'अशनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः ।

---

१ कमण्डल की शोभा । २ सांसारिक बाधा से मुक्ति देने वाली । ३ देवताओं का प्राण । ४ हिमालय । ५ राजा सगर के साठ हजार पुत्र । ६ प्रवेश । ७ पर्वत के समान । ८ नगाड़े बजते हैं । ९ प्रसिद्धि । १० दो कमल । ११ मोती-समूह । १२ मुखमण्डल । १३ सागर के नाते । समुद्र से कमल और चन्द्र की उत्पत्ति । १४ चन्द्रकलंक । १५ चन्द्रमुखी स्त्रियां ।

तोरै आसु[1] कर्मरूप रसी है। ससी सम जसी असी बरना में बसी[2] पाप खसी[3] हेतु असी ऐसी लसी वाराणसी है'॥ १२॥

'रचित प्रभासी[4] भासी अवलि मकानन की जिनमें अकासी फबैं रतन नकासी है। फिरैं दास दासी विप्र गृही औ संन्यासी लसै बर गुन-रासी देवपुरीहू न जा-सी है। गिरिधरदास बिस्वकीरति बिलासी रमा हासी[5] लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है। खासी परकासी पुनवासी चंद्रिका-सी जाके बासी अबिनासी अघनासी[6] ऐसी कासी है'॥ १३॥

देखो, जैसा ईश्वर ने यह सुन्दर अँगूठी के नगीने-सा नगर बनाया है वैसी ही नदी भी इसके वास्ते दी है। धन्य गंगे!

'जम की सब त्रास बिनास करी मुख ते निज नाम उचारन में।
सब पाप प्रतापहि दूरि दर्‌यौ[8] तुम आपन आप निहारन में॥
अहो गंग अनंग के शत्रु[9] करे बहु नेकु जलै मुख डारन में।
गिरिधारनजू कितने बिरचे गिरिधारन धारन[10] धारन में'॥ १४॥ ※

कुछ माहात्म्य ही पर नहीं, गंगाजी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है! अहा!

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक-सी[11] सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि[12] आवत।
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत॥ १५॥
सुभग स्वर्ग सोपान[13] सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिबिध[14] भय दूर मिटावत॥
श्रीहरिपद[15]-नख-चंद्रकान्तमनि-द्रवित[16] सुधारस।[17]

※ ये चारो छंद ग्रंथकर्त्ता के पिता श्री बाबू गोपालचंद्र के बनाये हैं जो कविता में अपना नाम गिरधरदास रखते थे।

१ तत्काल। २ अस्सी वरणा के बीच। ३ वकरे। ४ ज्योति-सी। ५ लक्ष्मी की हंसी। ६ पाप भक्षक। ७ भय। ८ हटाया। ९ महादेव। १० स्नान के फल से विष्णु। ११ हीरा जैसी। १२ इस प्रकार। १३ स्वर्ग की सीढ़ी। १४ तीनों ताप। १५ विष्णुचरण। १६ चन्द्रमा देख पिघलने वाली। १७ अमृत।

ब्रह्म-कमंडल-मंडन[1] भव-खंडन[2] सुर-सरबस[3] ।। १६ ।।
सिवा सिर मालती माल भगीरथ नृपति पुन्य फल ।
ऐरावत गज गिरिपति हिमनग[4] कंठहार कल ।।
सगर सुवन सठ सहस[5] परस जल मात्र उधारण ।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारण[6] ।। १७ ।।
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई ।
सपनेहूँ नहिं तजी रही अंकम लपटाई ।।
कहूँ बँधे नवघाट उच्च गिरिवर[7] सम सोहत ।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ।। १८ ।।
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा-पताका ।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा[8] करि साका[9] ।।
मधुरी नौबत बजति कहूँ नारी-नर गावत ।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ।। १९ ।।
कहुँ सुंदरी नहात नीर कर युगल उछारत ।
जुग अंबुज[10] मिलि मुक्त-गुच्छ[11] मनु सुच्छ निकारत ।।
धोअत सुंदरि वदन[12] करन अति ही छवि पावत ।
बारधि नाते[13] ससि कलंक मनु कमल[14] मिटावत ।। २०।।
सुंदरि ससिमुख[15] नीर मध्य इमि सुंदर सोहत ।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ।।
दीठि जहीं जहँ जाति रहति तितिही ठहराई ।
गंगा छबि हरिचंद कछू बरनी नहिं जाई ।। २१ ।।

(कुछ सोच कर) पर हा ! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है—

'अशनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः ।

---

१ कमण्डल की शोभा । २ सांसारिक बाधा से मुक्ति देने वाली । ३ देवताओं का प्राण । ४ हिमालय । ५ राजा सगर के साठ हजार पुत्र । ६ प्रवेश । ७ पर्वत के समान । ८ नगाड़े बजते हैं । ९ प्रसिद्धि । १० दो कमल । ११ मोती-समूह । १२ मुखमण्डल । १३ सागर के नाते । समुद्र से कमल और चन्द्र की उत्पत्ति । १४ चन्द्रकलंक । १५ चन्द्रमुखी स्त्रियां ।

मगधेन समा काशी गंगाप्यंगारवाहिनी ❀ ॥' ६ ॥

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिए दुखी होता है। हा! कैसे कष्ट की बात है, राज-पाट, धन-धाम, सब छूटा, अब दक्षिणा कहाँ से देंगे! क्या करें। हम सत्य कर्म कभी छोड़ेंगे ही नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे और जो यह शाप न भी देंगे तो क्या? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग सकते। क्या करें? कुबेर को जीतकर धन लावें? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है। तो क्या किसी से माँगकर दें? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे। फिर ऋण काढ़ें? पर देंगे कहाँ से? हा! देखो, काशी में आकर लोग संसार के बंधन से छूटते हैं पर हम को यहाँ भी हाय हाय मची है। हा! पृथ्वी तू फट क्यों नहीं जाती कि अपना कलंकित मुँह किसी को न दिखाऊँ (आतंक[1] से) पर यह क्या? सूर्य्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे ये कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिये बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें। (कुछ सोच कर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती, क्या करें? हमें तो संसार सूना जान पड़ता है। (चिंता करके एक साथ हर्ष से) वाह, अभी तो स्त्री, पुत्र और हम तीन तीन मनुष्य तैयार हैं। क्या हम लोगों के बिकने से सहस्र स्वर्ण मुद्रा भी न मिलेगी? तब फिर किस बात का इतना सोच? न जाने बुद्धि इतनी देर तक कहाँ सोई थी। हमने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था—

बेचि देह दारा सुअन, होइ दासहू मंद
रखि है निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचंद ॥ २२ ॥

(नेपथ्य में) तो क्यों नहीं जल्दी अपने को बेचता? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे-पीछे दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें।

❀ जिन का भोजन, वस्त्र और निवास ठीक नहीं है, उनको काशी भी मगध है और गंगा भी तपानेवाली है।

१ भयभीतमुद्रा।

ह०—अरे मुनि तो आ पहुँचे। क्या हुआ, आज उनसे एक दो दिन की अवधि[1] और लेंगे।

(विश्वामित्र आते हैं)

वि०—(आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट के कारण सब बहक[2] गई। कुछ इन्द्र के कहने ही पर नहीं, हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है पर क्या करें, इसके सत्य, धैर्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता। यद्यपि यह राज्यभ्रष्ट हो चुका पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट[3] न कर लूँगा तब तक मेरा संतोष न होगा (आगे देखकर) अरे यही दुरात्मा (कुछ रुककर) वा महात्मा हरिश्चन्द्र है (प्रगट) क्यों रे आज महीने में के दिन बाकी है ? बोल कब दक्षिणा देगा ?

ह०—(घबड़ाकर) अहा महात्मा कौशिक[4] ! भगवन् प्रणाम करता हूँ।

(दंडवत करता है)

वि०—हुई प्रणाम, बोल तैंने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया ? आज महीना पूरा हुआ, अब मैं क्षण भर भी न मानूँगा। दे अभी, नहीं तो (शाप के वास्ते कमंडल से जल हाथ में लेते हैं।)

ह०—(पैरों पर गिरकर) भगवन् ! क्षमा कीजिये। यदि आज सूर्यास्त के पहिले मैं न दूँ तो जो चाहे कीजिएगा। मैं अभी अपने को बेचकर मुद्रा[5] ले आता हूँ।

वि०—(आप ही आप) वाह रे महानुभावता[6] ! (प्रगट) अच्छा आज साँझ तक और सही। साँझ को न देगा तो मैं शाप ही न दूँगा वरंच[7] त्रैलोक्य में आज विदित कर दूँगा कि हरिश्चन्द्र सत्य-भ्रष्ट हुआ। (जाते हैं)

ह०—भला मुनि से किसी तरह प्राण बचे। अब चलें अपना शरीर बेचकर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा ! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है। इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार[8] की लाल लाल आँखें न देखी हैं (आगे चलकर)

---

१ समय। २ विफल। ३ सत्य से विमुख। ४ विश्वामित्र। ५ दक्षिणा की हजार मुहरें। ६ सज्जनता। ७ वरन। ८ महाजन।

अरे क्या बाजार में आ गये ! अच्छा (सर पर तृण रखकर*) अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारो, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं किसी को लेना हो तो लो । (इसी तरह कहता हुआ इधर उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य-विक्रय[1] को अनुचित जानकर हम दूसरे को दंड देते थे, पर आज वही कर्म हम आप करते हैं, दैव[2] बली है । (अरे सुनो भाई इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है । ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'क्यों तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो ?' आर्य्य, यह बात मत पूछो, यह सब कर्म की गति है । (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे ?' इसका क्या पूछना है । स्वामी जो कहेगा वह करेंगे; समझते सब कुछ हैं पर इस अवसर पर समझना कुछ काम नहीं आता और जैसे स्वामी रक्खेगा वैसे रहेंगे । जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है । (ऊपर देखकर) क्या कहा—'कुछ दाम कम करो ।' आर्य हम लोग तो क्षत्रिय हैं; हम दो बात कहाँ से जानें । जो कुछ ठीक था, कह दिया ।

(नेपथ्य में से)

आर्यपुत्र ! ऐसे समय हमको छोड़े जाते हो ? तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रहकर क्या करूँगी ? स्त्री को अर्द्धांगिनी कहते हैं; इससे पहिले बायाँ अंग बेच लो तब दाहिना अंग बेचो ।

ह०—(सुनकर बड़े शोक से) हा ! रानी की यह दशा इन आँखों से कैसे देखी जायगी ?

(सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शै०—कोई महात्मा कृपा करके हमको मोल लें तो बड़ा उपकार हो ।

बा०—अमको बो कोई मोल ले तो बला उपकाल हो[3] ।

शै०—(आँखों में आँसू भरकर) पुत्र ! चन्द्रकुलभूषण महाराज वीर-

---

* उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो सिर पर तृण रखता था ।

१ गुलामीप्रथा । २ विधाता । ३ रोहिताश्व की तोतली बोली ।

सेन का नाती और सूर्य्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यों ऐसे कातर वचन[1] कहता है ! मैं अभी जीती हूँ ।

(रोती है)

बा०—(माँ का आँचल पकड़के) माँ, तुमको कोई मोल लेगा तो अम को भी मोल लेगा । आँ आँ, माँ लोती काए को ओ (कुछ रोना सा मुँह वनाकर शैव्या का आँचल पकड़ के झूलने लगता है ।)

शै०—(आँसू पोंछकर) मेरे भाग्य से पूछ ।

ह०—अहह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था ! हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई । हम उनको कुछ धीरज भी न दे आए । उनकी अब कौन गति होगी ? हा ! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो । अब यह देखना पड़ा । हृदय ! तुम इस चक्रवर्ती[2] की सेवा योग्य बालक और स्त्री को बिकता देखकर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ?

(बारंबार लंबी साँसें लेकर आँसू बहाता है ।)

शै०—(कोई महात्मा इत्यादि कहती हुई ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'क्या क्या करोगी ?' परपुरुष से संभाषण[3] और उच्छिष्ट[4] भोजन छोड़कर और सब सेवा करूँगी । (ऊपर देखकर) क्या कहा ? 'इतने मोल पर कौन लेगा ?' आर्य्य ! कोई साधु ब्राह्मण महात्मा कृपा करके ले ही लेंगे ।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं ।)

उ०—क्यों रे कौंडिन्य[5] ! सच ही दासी बिकती है ?

ब०—हाँ गुरुजी, क्या मैं झूठ कहूँगा । आप ही देख लीजिए ।

उ०—तो चल, आगे-आगे भीड़ हटाता चल । देख धाराप्रवाह की भाँति कैसे सब कामकाजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं, भीड़ के मारे पैर धरने की जगह नहीं है और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता।

ब०—(आगे-आगे चलता हुआ) हटो भाई हटो । (कुछ आगे बढ़कर) गुरुजी यह जहाँ भीड़ लगी है वहीं होगी ।

उ०—(शैव्या को देखकर) अरे यही दासी बिकती है ?

शै०—(अरे हमको कोई मोल ले इत्यादि कहती और रोती है ।)

---

१ दीन वचन । २ सम्राट् । ३ बोलना । ४ छोडा हुआ । ५ कुंडिनगोत्र का वटु ।

बा०—(माता की भाँति तोतली बोली से कहता है ।)

उ०—पुत्रि कहो ! तुम कौन-कौन सेवा करोगी ?

शै०—परपुरुष से संभाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और जो जो कहिएगा सब सेवा करूँगी ।

उ०—वाह ! ठीक है । अच्छा लो सुवर्ण । हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र[1] की अग्नि की सेवा से घर के कामकाज नहीं कर सकती, सो तुम सम्हालना ।

शै०—(हाथ फैला कर) महाराज आपने बड़ा उपकार किया ।

उ०—(शैव्या को भली-भाँति देखकर आप ही आप) अहा ! यह निस्सं-देह किसी बड़े कुल की है । इसका मुख सहज लज्जा से ऊँचा नहीं होता और दृष्टि बराबर पैर ही पर है । जो बोलती है वह धीरे-धीरे और बहुत सम्हाल कर बोलती है । हा ! इसकी यह गति क्यों हुई ! (प्रगट) पुत्री तुम्हारे पति हैं न ?

शै०—(राजा की ओर देखती हैं ।)

ह०—(आप ही आप दुःख से) अब नहीं हैं । पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो !

उ०—(राजा को देखकर आश्चर्य से) अरे यह विशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल[2] और संसार की रक्षा करने योग्य लम्बी-लम्बी भुजावाला[3] कौन मनुष्य है, और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रखा है ? (प्रगट) महात्मा ! तुम हमको अपने दुःख का भागी समझो और कृपापूर्वक अपना सब वृत्तान्त कहो ।

ह०—भगवन् ! और तो विदित करने का अवसर नहीं है, इतना ही कह सकता हूँ कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई ।

उ०—तो हमसे धन लेकर आप शीघ्र ही ऋण मुक्त हूजिए[4] ।

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रखकर) राम-राम ! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है । आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी ?

---

१ कुण्ड जिसमें सदा अग्नि रखी जाती है । २ चौड़ी छाती । ३ आजानुबाहु—चक्रवर्ती के लक्षण । ४ होइये ।

उ०—तो पाँच सौ मोहर पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शै०—(राजा से हाथ जोड़ कर) नाथ, हमारे आछत[1] आप मत बिकिए जिसमें हमको अपनी आँख से यह न देखना पड़े, हमारी इतनी विनती मानिए (रोती है)।

ह०—(आँसू रोक कर) अच्छा तुम्हीं जाओ। (आप ही आप) हा! यह वज्र हृदय हरिश्चंद्र ही का है कि अब भी नहीं विदीर्ण[2] होता!

शै०—(राजा के कपड़े में सोना बाँधती हुई) नाथ, अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य्य! आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्य्यपुत्र का भलीभाँति दर्शन कर लूँ फिर यह मुख कहाँ और मैं कहाँ!

उ०—हाँ हाँ, मैं जाता हूँ, कौंडिन्य यहाँ है। तुम उसके साथ आना। (जाता है)

शै०—(रोकर) नाथ मेरे अपराधों को क्षमा करना।

ह०—(अत्यन्त घबड़ा कर) अरे, अरे विधाता! तुझे यही करना था। (आप ही आप) हा! पहिले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा[3] था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान् सूर्य का भी मुख मलिन हो रहा है। (रोता हुआ प्रगट रानी से) प्रिये! सर्वभाव[4] से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना।

शै०—(रोकर) नाथ, जो आज्ञा।

बटु०—उपाध्यायजी गये, अब चलो जल्दी करो।

ह०—(आँखों में आँसू भरके) देवी (फिर रुककर अत्यन्त सोच से आप ही आप) हाय! अब मैं देवी क्यों कहता हूँ, अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया। (धैर्य्य से) देवी! उपाध्याय की आराधना[5] भली प्रकार करना और इनके सब शिष्यों से भी सुहृद् भाव[6] रखना, ब्राह्मण की स्त्री की प्रीतिपूर्वक सेवा करना, बालक का यथासंभव पालन करना और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावें। जो जो दैव[7] दिखावे उसे धीरज से देखना (आँसू बहते हैं)।

---

१ होते। २ फटना। ३ लिखा। ४ सभी प्रकार से। ५ सेवा। ६ प्रेमपूर्ण व्यवहार। ७ ईश्वर।

शै०—जो आज्ञा (राजा के पैरों पर गिर कर रोती है)।

ह०—(धैर्यपूर्वक) प्रिये ! देर मत करो, बटुक घबड़ा रहे हैं।

शै०—(उठकर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे धीरे चलती है।)

बा०—(राजा से) पिताजी, माँ कआँ जाती ऐं ?

ह०—(धैर्य से आँसू रोककर) जहाँ हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बा०—(बटुक से) अले[1] माँ को मत ले जा। (माँ का आँचल पकड़ के खींचता है।)

बटु०—(बालक को ढकेलकर) चल चल देर होती है।

बा०—(ढकेलने से गिरकर रोता हुआ उठकर अत्यन्त क्रोध और करुणा से माता-पिता की ओर देखता है।)

ह०—ब्राह्मण देवता बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना। (बालक को उठा कर धूर पोंछ मुँह चूमता हुआ) पुत्र, मुझ चांडाल का मुख ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाओ माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रहकर क्या करोगे ? (रानी से) प्रिये ! धैर्य धरो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। जाओ, देर होती है।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं।)

ह०—धन्य हरिश्चंद्र ! तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किसका होगा ? संसार में धन और जन[2] छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं, पर तुमने उसका भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं)

ह०—(पैर पर गिरके प्रणाम करता है)

वि०—ला दे दक्षिणा। अब साँझ होने में कुछ देर नहीं है।

ह०—(हाथ जोड़कर) महाराज आधी लीजिए, आधी अभी देता हूँ। (सोना देता है)।

वि०—हम आधी दक्षिणा ले के क्या करें, दे चाहे जहाँ से सब दक्षिणा।

---

१ तोतली भाषा में अरे। २ परिवार।

(नेपथ्य में)

धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिक् ज्ञानं धिक् बहुश्रुतम् ।
नीतवानसि यद् ब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमां दशाम् ।। १० ।।

वि०—(बड़े क्रोध से) आः हमको धिक्कार देनेवाला यह कौन दुष्ट है ? (ऊपर देखकर) अरे विश्वेदेवा[1] ! (क्रोध से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्षपातियो ! तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहाँ भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ मारे जाओ ।❀ (जल छोड़ते हैं)

(नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है ।)

(सुनकर और ऊपर देखकर आनन्द से) हहहह ! अच्छा हुआ ! यह देखो किरीट[2] कुंडल[3] बिना मेरे क्रोध से विमान से छूटकर विश्वेदेवा उलटे ही होकर नीचे गिरते हैं । और हमको धिक्कार दें !

ह०—(ऊपर देख कर भय से) वाह रे तप का प्रभाव । (आप ही आप) तब तो हरिश्चंद्र को अब तक शाप नहीं दिया है यही बड़ा अनुग्रह[4] है । (प्रगट) भगवन् यह स्त्री बेचकर आधा धन पाया है सो लें, आधा हम अपने को बेच अभी देते हैं ।

(नेपथ्य में) अरे अब तो नहीं सही जाती ।

वि०—हम आधा न लेंगे, चाहे जहाँ से अभी सब दे ।

ह०—(अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है ।)

(चांडाल के वेष में धर्म और सत्य आते हैं †)

धर्म—(आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरिरूप जगत हमारे बल चालत ।
जल थल नभ थिर मों प्रभाव मरजाद न टालत ।।
हम ही नर के मीत सदा साँचे हितकारी ।

❀ यही पाँचों विश्वेदेवा विश्वामित्र के शाप से द्वापर में द्रौपदी के पांच पुत्र हुए थे जिन्हें अश्वत्थामा ने बालकपन ही में मार डाला । † कांछ, काला रंग, लाल नेत्र, सिर पर छोटे-छोटे घुँघराले बाल और शरीर नंगा, बातों से मतवालापन झलकता हुआ ।

१ विश्वा के पुत्रों का नाम । २ मुकुट । ३ कान का आभूषण । ४ कृपा ।

इक हम हीं सँग जात तजत जब पितु सुत नारी ॥
सो हम नित थित सत्य में जाके बल सब जग जियो ।
सोइ सत्य परिच्छन[1] नृपति को आजु भेप हम यह लियो ॥ २३ ॥

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि[2] के समान दूसरा आज त्रिभुवन[3] में नहीं है। (आगे बढ़कर प्रत्यक्ष) अरे! हरजनवाँ! मोहन का संदूक ले आवा है न?

सत्य—क चौधरी मोहर ले के का करबो[4] ?

धर्म—तोह सें का काम पूछै से ?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

ह०—(अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि दो तीन वेर पुकार के इधर उधर घूमकर) हाय ! कोई नहीं बोलता। और कुलगुरु सूर्य भी आज हम से रुष्ट होकर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं[5] (घबराहट दिखाता है)।

धर्म—(आप ही आप) हाय हाय ! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है। तो अब चलें आगे। (आगे बढ़कर) अरे ! अरे !! हम तुम को मोल लेंगे। लेव, यह पचास सै मोहर लेव।

ह०—(आनंद से आगे बढ़कर) वाह कृपानिधान ! बड़े अवसर पर आये। लाइए। (उसको पहिचानकर) आप मोल लेंगे ?

धर्म—हाँ, हम लोग लेंगे। (सोना देना चाहता है)

ह०—आप कौन हैं ?

धर्म—

हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनों पार ॥
सब मसान पर हमारा राज। कफन माँगने का है काज ॥
फूलमती❀ देवी के दास। पूजैं सती मसान निवास ॥
धनतेरस औ रात दिवाली। बल चढ़ाय के पूजैं काली ॥
सो हम तुमको लेंगे मोल। देंगे मुहर गाँठ से खोल ॥२४॥

❀ प्राचीन काल में चांडालों की कुलदेवी चंडकात्यायनी थीं, परन्तु इस काल में फूलमती इन लोगों की कुलदेवी हैं।

१ परीक्षा के लिए। २ नृ-श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र। ३ तीनों लोक। ४ करोगे। ५ अस्त हो रहे हैं।

(मत्त की भाँति चेष्टा करता है)

ह०—(बड़े दुःख से) अहह ! बड़ा दारुण व्यसन[1] उपस्थित हुआ है। (विश्वामित्र से) भगवन् मैं पैर पड़ता हूँ, मैं जन्म भर आपका दास होकर रहूँगा, मुझे चांडाल होने से बचाइए।

वि०—छिः मूर्ख ! भला हम दास लेके क्या करेंगे। 'स्वयं दासास्तपस्विनः'[2]।

ह०—(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा कीजिएगा हम सब करेंगे।

वि०—सब करेगा न ? (ऊपर हाथ उठाकर) धर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूँगा।

ह०—हाँ हाँ, जो आप आज्ञा दीजियेगा सब करूँगा।

वि०—तो इसी गाहक[3] के हाथ अपने को बेचकर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे।

ह०—जो आज्ञा (आप ही आप) अब कौन सोच है (प्रगट धर्म से) तो हम एक नियम[4] पर बिकेंगे।

धर्म—यह कौन ?

ह०—भीख असन[5] कंबल बसन, रखिहौं दूर निवास।
जो प्रभु आज्ञा देइहैं, करिहौं सब ह्वै दास ॥ २५ ॥

धर्म—ठीक है, लेव सोना (दूर से राजा के आँचल में मोहर देता है।)

ह०—(लेकर हर्ष से आप ही आप)
ऋण छूट्यो पूर्‌यो बचन, द्विजहु न दीनो शाप।
सत्य पाली चंडालहू, होइ आजु मोहि दाप[6] ॥ २६ ॥

(प्रगट विश्वामित्र से) भगवन् ! लीजिए मोहर।

वि०—(मुँह चिढ़ाकर) सचमुच देता है ?

ह०—हाँ हाँ यह लीजिए (मोहर देते हैं)।

वि०—(लेकर) स्वस्ति। (आप ही आप) बस अब चलो बहुत परीक्षा हो चुकी (जाना चाहते हैं)।

---

१ कठिन अवसर। २ तपस्वी स्वयं दास होते हैं। ३ ग्राहक। ४ शर्त। ५ भोजन। ६ गर्व।

ह०—(हाथ जोड़कर) भगवन्, दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न ?

वि०—हाँ, क्षमा हुआ अब हम जाते हैं।

ह०—भगवन् ! प्रणाम करता हूँ।

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)

ह०—अब चौधरी जी (लज्जा से रुक कर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करें।

धर्म—(मत्त की भाँति नाचता हुआ)

जाओ अभी दक्खिन मसान। लेव वहाँ कफ्फन का दान ॥
जो कर तुमको नहीं चुकावे। सो किरिया करने नहिं पावे ॥
चलो घाट पर करो निवास। भए आज से हमरे दास ॥ २७ ॥

ह०—जो आज्ञा।

(जवनिका गिरती है)

इति तीसरा अंक

चौथा अंक

(स्थान—दक्षिण श्मशान, नदी, पीपल का बड़ा पेड़, चिता, मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी इत्यादि। कंमल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिये हुए राजा हरिश्चन्द्र दिखलाई पड़ते हैं)।

ह०—(लंबी साँस लेकर) हाय ! अब जन्म भर यही दुख भोगना पड़ेगा।

दास जाति चंडाल को, घर घनघोर मसान।
कफन खसोटी को करम, सब ही एक समान ॥ २८ ॥

न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शांत हुआ कि नहीं। बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है। दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पड़ा। हम क्या-क्या सोचें। अपनी अनाथ प्रजा को,

या दीन नातेदारों[1] को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, वा उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चंडालपने को, हा ! बटुक के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोधभरी और रानी ने जाते समय करुणाभरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था, वह अब तक नहीं भूलता (घबड़ा कर) हा देवी ! सूर्यकुल की बहू और चंद्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गई और दासी बनीं। हा ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गूथ सकती थीं उनसे बरतन कैसे माँजोगी ! (मोन[2] प्राप्त होना चाहता है, पर सम्हल कर) अथवा क्या हुआ ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चंद्र ने सत्य छोड़ा।

वेचि देह दारा सुअन, होइ दासहू मंद।
राख्यो निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचंद ॥ २६ ॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे ! यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी ? कोई पुण्यात्मा का मुरदा आया होगा। तो हम सावधान हो जायँ (लठ कंधे पर रखकर फिरता हुआ) खबरदार खबरदार, बिना हमसे कहे और बिना हमें आधा कफन दिये कोई संस्कार[3] न करे (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर उधर देखता फिरता है।) (नेपथ्य में कोलाहल सुनकर) हाय हाय ! कैसा भयंकर स्मशान है ! दूर से मंडल बाँध बाँधकर[4] चोंच बाए, डैना फैलाये, कंगालों की तरह मुर्दों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं और कैसा मांस नोचकर आपस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यंत कर्णकटु अमंगल के नगाड़े[5] की भाँति एक के शब्द की लाग[6] में दूसरे सियार कैसे रोते हैं। इधर चिराइन[7] फैलाती चट चट करती चिता कैसी जल रही है, जिसमें कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू या चरबी बहती है, आग का रंग मांस के संबंध से नीला पीला हो रहा है, ज्वाला घूम घूमकर निकलती है। कभी एक साथ धधक उठती

१ कुटुम्बी। २ बेहोशी। ३ अन्तिम क्रिया। ४ फेरा लगा। ५ डंका। ६ चिल्लाना सुनकर। ७. मुर्दा जलने की दुर्गन्ध।

है कभी मंद हो जाती है। धूआँ चारों ओर छा रहा है। (आगे देख कर आदर से) अहा! यह बीभत्स व्यापार[1] भी बड़ाई के योग्य है। शव[2] तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो। अत एव कहा है—

'मरनो भलो बिदेस को, जहाँ न अपनो कोय।
माटी खायँ जनावराँ, महा महोच्छव[3] होय'॥ ३०॥

अहा! देखो—

सिर पर बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनँद उर धारत॥
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि खोदि कै माँस उचारत।
स्वान[4] आँगुरिन काटि काटि कै खान बिचारत॥
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद मढ्यो सबको हियो।
मनु ब्रह्मभोज जिजिमान कोउ आजु भिखारिन कहँ हियो॥३१॥

अहा! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है।

सोई मुख सोई उदर, सोई कर पद दोय।
भयो आजु कछु और ही, परसत जेहि नहिं कोय॥ ३२॥
हाड़ मास लाला रकत, बसा तुचा[5] सब कोय।
छिन्न भिन्न दुर्गंधमय, मरे मनुस[6] के होय॥ ३३॥
कादर जेहि लखिकै डरत, पंडित पावत लाज।
अहो! व्यर्थ संसार को, बिषय बासना साज॥ ३४॥

अहो! मरना भी क्या वस्तु है।

सोई मुख जेहि चंद बखान्यो। सोई अँग जेहि प्रिय करि जान्यो॥
सोई भुज जे पिय गर डारे। सोई भुज जिन रन बिक्रम[7] पारे॥ ३५॥
सोई पद जेहि सेवक बंदत। सोई छबि जेहि देखि अनंदत॥
सोई रसना जहँ अमृत बानी। जेहि सुनिकै हिय नारि जुड़ानी[8]॥ ३६॥
सोई हृदै जहँ भाव अनेका। सोई सिर जहँ निज बच टेका[9]॥

---

१ कार्य। २ मुर्दा। ३ महोत्सव। ४ कुत्ता। ५ चरबी चमड़ा। ६ मनुष्य। ७ वीरता। ८ प्रसन्न। ९ प्रतिज्ञा।

सोई छविमय अंग सुहाए। आज जीव बिनु धरनि सुवाए ॥ ३७ ॥
कहाँ गई वह सुंदर सोभा। जीवत जेहि लखि सब मन लोभा ॥
प्रानहुँ ते बढ़ि जा कहँ चाहत। ता कहँ आजु सबै मिलि दाहत[1] ॥ ३८ ॥
फूल बोझहू जिन न सहारे। तिन पै बोझ काठ बहु डारे ॥
सिर पीड़ा जिनकी नहिं हेरी। करत कपालक्रिया[2] तिन केरी ॥ ३९ ॥
छिनहूँ न भये कहुँ न्यारे। ते हू बन्धुन छोड़ि सिधारे ॥
जो दृग कोर महीप[3] निहारत। आजु काक तेहि भोज बिचारत ॥ ४० ॥
भुजबल जे नहिं भुवन समाये। ते लखियत मुख कफन छिपाये ॥
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे। गने काल सब एक हि लेखे ॥ ४१ ॥
सुभग कुरूप अमृत बिष साने। आजु सबै इक भाव बिकाने ॥
पुरु[4] दधीच[5] कोऊ अब नाहीं। रहे नाम ही ग्रंथन माहीं ॥ ४२ ॥

अहा! देखो वही सिर जिस पर मन्त्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रक्खा जाता था, जिसमें इतना अभिमान था कि इंद्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिसमें बड़े-बड़े राजा जीतने के मनोरथ भरे थे; आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में घिन करते हैं। (आगे देख कर) अरे यह स्मशान देवी[6] हैं। अहा कात्यायनी को भी कैसा बीभत्स उपचार प्यारा है! यह देखो डोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैंसों के गले के घंटे पीपल की डार में लटक रहे हैं, जिनमें लोलक[7] की जगह नली की हड्डी लगी है। घंटे के पानी से चारों ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के भेखं में लोहू के थापे[8] लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उसके खाने को कुत्ते और सियार लड़ लड़कर कोलाहल मचा रहे हैं। (हाथ जोड़ कर)

'भगवति! चंडि! प्रेते! प्रेतविमाने! लसत्प्रेते।

---

१ जलते हैं। २ शव जलाने के समय मस्तक तोड़ना। ३ राजा भी जिस दृष्टि को देखते थे। ४ ययातिपुत्र राजा पुरु। ५ शरीर की हड्डी देनेवाले दानी दधीच। ६ श्मशान देवी। ७ घंटे के मध्य भाग में लटका धातु। ८ छापे।

प्रेतास्थिरौद्ररूपे ! प्रेताशिनि ! भैरवि ! नमस्ते* ॥ ११ ॥'

(नेपथ्य में) राजन् ! हम केवल चांडालों के प्रणाम के योग्य हैं तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। माँगो क्या वर माँगते हो।

ह०—(सुन कर आश्चर्य से) भगवती ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिए (नेपथ्य में) साधु ! महाराज हरिश्चंद्र साधु !

ह०—(ऊपर देखकर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ[1] और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक[2] था, जो दोपहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण क्षण बढ़ाता गया, जो गगनांगन[3] का दीपक और काल-सर्प[4] का शिखामणि[5] था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गँवाकर देखो समुद्र में गिरा चाहता है। अथवा—

साँझ सोई पट[6] लाल कसे कटि[7] सूरज खप्पर हाथ लह्यो है।
पंछिन के बहु शब्दन के मिस जीव उचाटन मंत्र[8] कह्यो है ॥
मद्य भरी नर खोपरी सो ससि को नव बिंबहु धाइ गह्यो है।
दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै काल कपालिक[9] नाचि रह्यो है ॥४३॥
सूरज धूम बिना की चिता सोइ अंत में लै जल माहिं बहाई।
बोलैं घने तरु बैठि बिहंगम रोअत सो मनु लोग लोगाई ॥
धूम अँधार कपाल निसाकर[10], हाड़ नछत्र लहू सी† ललाई।
आनँद हेतु निसाचर के यह काल मसान सो साँझ बनाई ॥ ४४ ॥

अहा ! यह चारों ओर से पक्षी लोग कैसा शब्द करते हुए अपने अपने घोसलों की ओर चले आते हैं। वर्षा से नदी का भयंकर प्रवाह, साँझ होने से स्मशान के पीपल पर कौओं का एक संग अमंगल शब्द से काँव काँव करना और रात के आगमन से एक सन्नाटे का समय

---

* इसमें प्रायः सब श्लोक आर्यक्षेमीश्वर के बनाये चण्डकौशिक से उद्धृत किये गये हैं। † प्राचीन काल में राज के अपराधी लोग स्मशान पर गला काट कर मारे जाते थे; इसी से यहाँ स्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है।

१ सूर्य। २ प्रवृत्त करने वाला। ३ आकाश रूपी आंगन। ४ कालरूपी सांप। ५ सिर की मणि। ६ वस्त्र। ७ कमर। ८ मन हटा देने वाला मन्त्र। ९ अघोरी। १० चन्द्रमा।

चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अंधकार बढ़ता ही जाता है। वर्षा के कारण इन स्मशानवासी मंडूकों[1] का टर-टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।

रुरुआ[2] चहुँदिसी ररत डरत सुनि के नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलू कहुँ रटत पुकारी॥
अंधकार-बस गिरत काक अरु चील करत रव[3]।
गिद्ध गरुड़हड़गिल्ल[4] भजत लखि निकट भयद दव[5]॥
रोवत सियार गरजत नदी स्वान भूँकि डरपावहीं।
सँग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि रव तुमुल[6] मचावहीं॥ ४५॥

इस समय ये चिताएँ भी कैसी भयंकर मालूम पड़ती हैं। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आँच से हाथ पैर जलकर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिलकुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे ही छोड़ दिया है, किसी का मुँह जल जाने से दाँत निकला हुआ भयंकर हो रहा है, और कोई आग में ऐसा जल गया है कि कहीं पता भी नहीं है। वाह रे शरीर! तेरी क्या गति होती है!!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे, उसको कीड़ों या मछलियों से नुचवाना और सड़ा कर दुर्गंधमय करना बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहेगा न दुर्गति होगी। हा! चलो आगे चलो। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर घूमता है।)

(पिशाच और डाकिनीगण परस्पर आमोद करते
और गाते बजाते हुए आते हैं।)

पिशाच और डाकिनी—

हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम्।
हम सेवैं[7] मसान शिव को भजैं बोलैं बम बम बम॥

---

१ श्मशान के मेढक। २ मरैल चिड़िया। ३ शब्द। ४ विशाल गिद्ध। ५ अग्नि। ६ घनघोर। ७ रहना।

पिशाच—हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी तोड़ैंगे ।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ैंगे ॥
डाकिनी—हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावैंगी ।
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावैंगी ॥
सब—हम नाचैं मिल कर थेई थेई थेई थेई कूदैं धम् धम् धम् ।
हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम् ॥
पिशाच—हम काट काट कर सिर को गेंदा उछालैंगे ।
हम खींच खींच कर चरबी पंशाखा[1] बालैंगे[2] ॥
डाकिनी—हम माँग में लाल लहू का सेंदुर लगावैंगी ।
हम नस के तागे चमड़े का लहँगा बनावैंगी ॥
सब—हम धज से सज के बज के चलैंगे चमकैंगे चम चम चम ।
पिशाच—लोह का मुह से फर्र फर्र फुहारा छोड़ैंगे ।
माला गले पहिरने को अँतड़ी को जोड़ैंगे ॥
डाकिनी—हम लाद के औंधे[3] मुरदे चौकी बनावैंगी ।
कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावैंगी ॥
सब—हम मुख से गावैंगे ढोल बजावैंगे ढम ढम ढम ढम ढम ।
(वैसे ही कूदते हुये एक ओर से चले जाते हैं ।)

ह०—(कौतुक से देखकर) पिशाचों का क्रीड़ा-कुतूहल[4] भी देखने के योग्य है । आह ! यह कैसे काले झाडू से सिर के बाल खड़े किये लंबे लंबे हाथ पर विकराल दाँत लंबी जीभ निकाले इधर उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते[5] हैं मानो भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहाँ स्वच्छंद विहार कर रही है । हाय ! हाय ! इनका खेल और सहज व्यवहार भी कैसा भयङ्कर है । कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लोहू भर भरके पीता है, कोई सिर का गेंद बनाकर खेलता है, कोई अँतड़ी निकालकर गले में डाले है और कोई चंदन की भाँति चरबी और लोहू शरीर में पोत रहा है । एक दूसरे से माँस छीन कर ले भागता है, एक जलता माँस मारे तृष्णा के मुँह में रख लेता है

१ पाँच ज्योति की मसाल । २ जलावेंगे । ३ उलटे । ४ खेल-कूद । ५ चिल्लाते हैं ।

पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू थू करके थूक देता है, और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है। हा! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ-समेत नोच लाई है जिसे देखने को चारो ओर से सब भूत एकत्र हो रहे हैं और सभों को इसका बड़ा कौतुक[1] हो गया है! हँसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुरदों के अंगों से लड़ते हैं और उनको लेकर नाचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो स्मशान के कुत्तों को पकड़ पकड़ कर खा जाते हैं। अहा! भगवान् भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योग-साधना की है। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरता है)। (ऊपर देखकर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अँधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता! चांडालकुल की भाँति श्मशान पर तम[2] का भी आज राज हो रहा है (स्मरण करके) हा! इस दुःख की दशा में भी हमसे प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो, पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता है। सच है—

टूट टाट[3] घर टपकत खटियौ टूटि।
पिय कै बाँह उसीसवाँ[4] सुख कै लूटि॥'

विधनौं[5] ने इस दुःख पर भी वियोग दिया। हा! यह वर्षा और यह दुःख! हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा, पर जिसने सपने में भी दुःख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि! धीरज धरो! धीरज धरो! तुमने ऐसी ही भाग्यहीन से स्नेह किया है जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख है। (ऊपर देखकर) अरे पानी बरसने लगा। (घोघी[6] भली भाँति ओढ़कर) हमको तो यह वर्षा और स्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो—

चपला की चमक चहूँघाँ[7] सो लगाई
चिता चिनगी चिलक पटबीजनों[8] चलायो है।
हेती बगमाल[9] श्याम बादर सुभूमि कारी

---

१ आश्चर्य। २ अँधेरा। ३ टूटा-फूटा। ४ तकिया। ५ विधाता। ६ कम्बल की बरसाती। ७ चारो ओर। ८ जुगनू। ९ बगुलों की कतार।

वीरवधू[1] लहू बूँद भुव लपटायो है।
हरीचंद नीर धार आँसू सी परत जहाँ
दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है।
दाहन वियोग दुखियान को मरेहू
यह देखो पापी पावस मसान[2] बनि आयो है॥ ४६॥

(कुछ देर तक चुप रहकर) कौन है ? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर उधर फिरकर)

इंद्र काल हू सरिस जो आयसु[3] लाँघै कोय।
यह प्रचंड भुजदण्ड मम, प्रतिभट[4] ताको होय॥ ४७॥

अरे कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़कर) कौन है ? (नेपथ्य में) हम हैं।

ह०—अरे हमारी बात का उत्तर कौन देता है ? चलें, जहाँ से आवाज आई है वहाँ चलकर देखें। (आगे बढ़कर नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह कौन है ?

चिता भस्म सब अंग लगाये। अस्थि अभूषन विविध बनाये॥
हाथ कपाल मसान जगावत। को यह चल्यो रुद्र सम आवत॥४८॥

(कापालिक के वेष में धर्म आता है *)

धर्म०—अरे हम हैं—

वृत्ति अयाचित आत्मरति, करि जग के सुख त्याग।
फिरहिं मसान मसान हम, धारि अनंद विराग॥ ४९॥

(आगे बढ़कर महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद[5] न टालत॥

---

* गेरुआ वस्त्र का काछा काछे, गेरुआ कफनी पहने, सर के बाल खोले, सेन्दुर का अर्द्धचन्द्र दिये, नंगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते, नशे में आँख लाल, लाल फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहने।

१ वीरबहू। २ वर्षा श्मशान बनी है। ३ आदेश। ४ शत्रु। ५ मर्यादा।

हम ही नर के मीत सदा साँचे हितकारी।
इक हम ही सँग जात तजत जब पितु सुत नारी॥
सो हम नित थित सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य परिच्छिन्न नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥ ५०॥

(कुछ सोच कर) राजर्षि हरिश्चंद्र की दुःख-परपरा[1] अत्यंत शोचनीय और इनके चरित्र अत्यंत आश्चर्य के हैं। अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है।

महत त्रिविध दुःख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छाँड़हीं, जे जग साँचे लोग॥ ५१॥
बरु सूरज पच्छिम उगै, बिंध्य तरै जल माहिं।
सत्यबीर जन पै कबहुँ, निज बच[2] टारत नाहिं॥ ५२॥

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुःख को दुःख, सुख को सुख गिनते ही नहीं. चलें उनके पास चलें। (आगे बढ़ कर और देख कर) अरे यही महात्मा हरिश्चंद्र हैं? (प्रगट) महाराज! कल्याण हो।

ह०—(प्रणाम करके) आइए योगिराज!

ध०—महाराज हम अर्थी[3] हैं।

ह०—(लज्जा और विकलता नाट्य करता है।)

ध०—महाराज! आप लज्जा मत कीजिए, हम लोग योगबल से सब कुछ जानते हैं। आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने को बहुत हैं। चंद्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुकों का कल्याण करता है।

ह०—हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिए।

ध०—अंजन गुटिका पादुका, धातुभेद बैताल।
वज्र रसायन जोगिनी, मोहि सिद्ध यहि काल*॥ ५३॥

---

*अंजन सिद्धि से जमीन में गड़े खजाने दीख पड़ते हैं। गुटिका मुँह में रख अथवा पादुका पहिनकर चाहे जहाँ अलक्ष्य चला जाय। धातु भेद से औषधिमात्र सिद्ध होती है। वैताल वश में होकर यथेच्छ काम देता है। वज्र सिद्ध होने से जहाँ गिराओ वहाँ

१ लगातार कष्ट। २ वचन। ३ इच्छुक।

ह०—तो मुझे जो आज्ञा हो वह करूँ ?

ध०—आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गये हैं पर विघ्न इसमें वाधक होते हैं सो विघ्नों का निवारण[1] कर दीजिए।

ह०—आप जानते हैं कि मैं पराया दास हूँ इस से जिस में मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूँ।

ध०—(आप ही आप) राजन्, जिस दिन तुम्हारा धर्म जायगा, उस दिन पृथ्वी किस के बल से ठहरेगी। (प्रत्यक्ष) महाराज, इस में धर्म न जायगा क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उलंघन करते ही नहीं। सिद्धि का आकर[2] इसी स्मशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण[3] करने जाता हूँ, आप विघ्नों का निषेध कर दीजिए। (जाता है)

ह०—(ललकार कर) हटो रे हटो, विघ्नों, चारों ओर से तुम्हारा प्रचार हमने रोक दिया।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज ! जो आज्ञा। आप-से सत्यवीर की आज्ञा कौन लाँघ सकता है।

खुल्यो द्वार कल्यान को, सिद्ध जोग तप आज।
निधि सिधि विद्या सब करहिं, अपने मन को काज ॥ ५४ ॥

ह०—(हर्ष से) बड़े आनंद की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया (विमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्याएं आती हैं* ।)

म० वि०—महाराज हरिश्चंद्र ! बधाई है। हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था तब देवताओं ने माया से आप को स्वप्न में हमारा रोना सुना कर हमारा प्राण बचाया।

ह०—(आप ही आप) अरे ये ही सृष्टि की उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली महाविद्याएं हैं जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके।

गिरता है। रसायन सिद्धि से चांदी–सोना बनता है। जोगिनी सिद्ध होने से भूत–भविष्यका वृत्तान्त कह देती है और सब इच्छा पूर्ण करती है। यही आठों सिद्धियां हैं।

* ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में, पर स्त्री का शृंगार। खेलने में चित्रपट के द्वारा परदे के ऊपर इनको दिखलावेंगे और इन की ओर से बोलने वाला नेपथ्य में से बोलेगा।

१ दूर कीजिये। २ खजाना। ३ प्रयोग।

(प्रगट हाथ जोड़ कर) त्रिलोक विजयिनी[1] महाविद्याओं को नमस्कार है।

म० वि०—महाराज ! हम लोग तो आपके बस में हैं। हमारा ग्रहण कीजिए।

ह०—देवियो ! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि की वशवर्त्तिनी[2] हो। उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

म० वि०—धन्य महाराज ! धन्य ! जो आज्ञा। (जाती हैं)

(धर्म एक बैताल के सिर पर पिटारा रखवाये हुए आता है।)

ध०—महाराज का कल्याण हो। आप की कृपा से महानिधान* सिद्ध हुआ। आप को बधाई है। अब लीजिए इस रसेन्द्र[3] को।

याही के परभाव सों, अमर देव सम होइ।
जोगी जन विहरहिं सदा, मेरु सिखर भय खोइ॥ ५५॥

ह०—(प्रणाम करके) महाराज, दासधर्म के यह विरुद्ध है। इस समय स्वामी के कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

ध०—(आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) तो इससे स्वर्ण बनाकर आप अपना दास्य[4] छुड़ा लें।

ह०—यह ठीक है, पर मैंने तो विनती की न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले, सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना सत्व[5] मात्र बेच चुका, इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को रसेंद्र दीजिए।

ध०—(आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चंद्र ! धन्य तुम्हारा धैर्य ! धन्य तुम्हारा विवेक ! और धन्य तुम्हारी महानुभावता ! या—

चलै मेरु बरु प्रलय जल, पवन झकोरन पाय।
पै बीरन के मन कबहुँ, चलहिं नहीं ललचाय॥ ५६॥

तो हमें भी उसमें कौन हठ है। (प्रत्यक्ष) बैताल ! जाओ जो महाराज की आज्ञा है वह करो।

---

* महानिधान बुभुक्षित धातुभेदी पारा जिसे बावन तोला पावरत्ती कहते हैं।

१ तीनों लोक का विजय करने वाला। २ नियन्त्रण में। ३ पारा। ४ अधीनता। ५ सारे हक।

बै०—जो रावल जी की आज्ञा। (जाता है)

ध०—महाराज! ब्राह्ममुहूर्त्त[१] निकट आया, अब हमको भी आज्ञा हो।

ह०—जोगिराज! हमको भूल न जाइएगा, कभी कभी स्मरण कीजिएगा।

ध०—महाराज! बड़े बड़े देवता आपका स्मरण करते हैं और करेंगे, मैं क्या कहूँ। (जाता है)

ह०—क्या रात बीत गई? आज तो कोई भी नया मुरदा नहीं आया। रात के साथ ही स्मशान भी शांत हो चला। भगवान् नित्य ही ऐसा करेंगे। (नेपथ्य में घंटा नूपुरादि का शब्द सुनकर) अरे यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ?

(विमान पर अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारहो प्रयोग आदि देवता* आते हैं।)

ह०—(आश्चर्य से) अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर स्मशान पर एकत्र हो रहे हैं।

दे०—महाराज हरिश्चंद्र की जय हो। आपके अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूट कर स्वतंत्र हो गये। अब हम आपके वश[२] में हैं जो आज्ञा हो करें। हम लोगे अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारह प्रयोग सब आपके हाथ मैं हैं।

ह०—(प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

दे०—(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चंद्र! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे। हमी लोगों की सिद्धि

---

* साधारण देवी और देवताओं के वेश में। अष्टसिद्धि, यथा—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। नवनिधि, यथा—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, नील और वर्चस्। बारह प्रयोग, यथा—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन, ये ६ बुरे और स्तंभन, वशीकरण, आकर्षण, बंदीमोचन, कामपूरण और वाक्प्रसारण ये ६ अच्छे। ये भी चित्रपट में दिखलाए जाँयगे।

१ सूर्योदय के पूर्व का समय। २ अधीन।

को बड़े बड़े योगी मुनि पच मरते[1] हैं। पर तुमने तृण की भाँति हमारा त्याग करके जगत् का कल्याण किया।

ह०—आप लोग मेरे सिर-आखों पर[2] हैं, पर मैं क्या करूँ, क्योंकि मैं पराधीन हूँ। एक बात और भी निवेदन है, वह यह कि छः अच्छे प्रयोगों की तो हमारे समय में सद्यः[3] सिद्धि होय, पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलम्ब से हो।

दे०—महाराज! जो आज्ञा। हम लोग जाते हैं। आज आपके सत्य ने शिवजी के कीलन*को भी शिथिल कर दिया।
महाराज का कल्याण हो। (जाते हैं।)

(नेपथ्य में इस भाँति मानों राजा हरिश्चंद्र नहीं सुनता)

(एक स्वर से) तो अप्सरा को भेजें?

(दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख! जिसको अष्ट सिद्धि, नवनिधियों ने नहीं डिगाया, उसको अप्सरा क्या डिगावेंगी।

(एक स्वर से) तो अब अंतिम उपाय किया जाय?

(दूसरे स्वर से) हाँ तक्षक[4] को आज्ञा दें। अब और कोई उपाय नहीं हैं।

ह०—अहा अरुण[5] का उदय हुआ चाहता है। पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया। (स्वाँस लेकर)

'वा चकई को भयो चित चीतो[6] चितौति चहूँ दिसि चायँ सों नाँची।
ह्वै गई छीन कलाधर[8] की कला जामिनी[9]-जोति मनो जम जाँची॥
बोलत बैरी बिहंगम[10] देव सँजोगिन की भई संपति काँची[11]।
लोहू पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिसाचिन प्राची[12]॥

हा प्रिये, इन बरसात की रातों को तुम रो-रो के बिताती होगी!

---

* शिवजी ने साधनमात्र को कील दिया है जिसमें जल्दी सिद्ध न हों, सो राजा हरिश्चंद्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इससे वह कीलन भी शिवजी की इच्छापूर्वक उस समय दूर हो गया था, क्योंकि यह भी तो एक सबमें बड़ा विघ्न था।

१ अत्यधिक कष्ट सहन। २ शिरोधार्य। ३ शीघ्र। ४ प्रसिद्ध नाग। ५ भास्कर। ६ इच्छित। ७ प्रसन्न। ८ चन्द्रमा। ९ रात्रि। १० पक्षीगण। ११ समय रूपी सम्पत्ति समाप्त हुई। १२ पूर्व दिशा।

बै०—जो रावल जी की आज्ञा। (जाता है)

ध०—महाराज! ब्राह्ममुहूर्त[1] निकट आया, अब हमको भी आज्ञा हो।

ह०—जोगिराज! हमको भूल न जाइएगा, कभी कभी स्मरण कीजिएगा।

ध०—महाराज! बड़े बड़े देवता आपका स्मरण करते हैं और करेंगे, मैं क्या कहूँ। (जाता है)

ह०—क्या रात बीत गई? आज तो कोई भी नया मुरदा नहीं आया। रात के साथ ही स्मशान भी शांत हो चला। भगवान् नित्य ही ऐसा करेंगे। (नेपथ्य में घंटा नूपुरादि का शब्द सुनकर) अरे यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ?

(विमान पर अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारहो प्रयोग आदि देवता* आते हैं।)

ह०—(आश्चर्य से) अरे यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर स्मशान पर एकत्र हो रहे हैं।

दे०—महाराज हरिश्चंद्र की जय हो। आपके अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूट कर स्वतंत्र हो गये। अब हम आपके वश में हैं जो आज्ञा हो करें। हम लोगे अष्ट महासिद्धि, नवनिधि और बारह प्रयोग सब आपके हाथ में हैं।

ह०—(प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

दे०—(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चंद्र! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे। हमी लोगों की सिद्धि

---

* साधारण देवी और देवताओं के वेश में। अष्टसिद्धि, यथा—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। नवनिधि, यथा—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, नील और वर्चस्। बारह प्रयोग, यथा—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन, ये ६ बुरे और स्तंभन, वशीकरण, आकर्षण, वंदीमोचन, कामपूरण और वाक्प्रसारण ये ६ अच्छे। ये भी चित्रपट में दिखलाए जाँयगे।

१ सूर्योदय के पूर्व का समय। २ अधीन।

को बड़े बड़े योगी मुनि पच मरते[१] हैं। पर तुमने तृण की भाँति हमारा त्याग करके जगत् का कल्याण किया।

ह०—आप लोग मेरे सिर-आँखों पर[२] हैं, पर मैं क्या करूँ, क्योंकि मैं पराधीन हूँ। एक बात और भी निवेदन है, वह यह कि छः अच्छे प्रयोगों की तो हमारे समय में सद्यः[३] सिद्धि होय, पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि बिलम्ब से हो।

दे०—महाराज! जो आज्ञा। हम लोग जाते हैं। आज आपके सत्य ने शिवजी के कीलन*को भी शिथिल कर दिया।
महाराज का कल्याण हो। (जाते हैं।)

(नेपथ्य में इस भाँति मानों राजा हरिश्चंद्र नहीं सुनता)

(एक स्वर से) तो अप्सरा को भेजें?

(दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख! जिसको अष्ट सिद्धि, नवनिधियों ने नहीं डिगाया, उसको अप्सरा क्या डिगावेंगी।

(एक स्वर से) तो अब अंतिम उपाय किया जाय?

(दूसरे स्वर से) हाँ तक्षक[४] को आज्ञा दें। अब और कोई उपाय नहीं है।

ह०—अहा अरुण[५] का उदय हुआ चाहता है। पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया। (स्वाँस लेकर)

'वा चकई को भयो चित चीतो[६] चितौति चहूँ दिसि चाय[७] सों नाँची।
ह्वै गई छीन कलाधर[८] की कला जामिनी[९]-जोति मनो जम जाँची॥
बोलत बैरी बिहंगम[१०] देव सँजोगिन की भई संपति काँची[११]।
लोहू पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिसाचिन प्राची[१२]॥

हा प्रिये, इन बरसात की रातों को तुम रो-रो के बिताती होगी!

---

* शिवजी ने साधनमात्र को कील दिया है जिसमें जल्दी सिद्ध न हों, सो राजा हरिश्चंद्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इससे वह कीलन भी शिवजी की इच्छापूर्वक उस समय दूर हो गया था, क्योंकि यह भी तो एक सबमें बड़ा विघ्न था।

१ अत्यधिक कष्ट सहन। २ शिरोधार्य। ३ शीघ्र। ४ प्रसिद्ध नाग। ५ भास्कर। ६ इच्छित। ७ प्रसन्न। ८ चन्द्रमा। ९ रात्रि। १० पक्षीगण। ११ समय रूपी सम्पत्ति समाप्त हुई। १२ पूर्व दिशा।

हा वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए, तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गये।

जेहि सहसन परिचारिका,[1] राखत हाथहिं हाथ।
सो तुम लोटत धूर में, दास-बालकन साथ॥ ५८॥
जाको आयसु जग नृपति, सुनतहि धारत सीस।
तेहि द्विज बटु आज्ञा करत, अहह कठिन अति ईस॥ ५९॥
बिनु तन बेचे बिनु दिये, बिनु जग ज्ञान विवेक।
दैव-सर्प दंशित[2] भए, भोगत कष्ट अनेक॥ ६०॥

(घबड़ा कर) नारायण ! नारायण !! मेरे मुख से क्या निकल गया ! देवता उसकी रक्षा करें। (बाईं आँख का फड़कना दिखा कर) इसी समय में यह महा अपशकुन[3] क्यों हुआ ? (दाहिनी भुजा का फड़कना दिखा कर) अरे और साथ ही यह मंगल शकुन भी ! न जाने क्या होनहार हैं, जो होना था सो हो चुका। अब इससे बढ़ कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरण मात्र बाकी है। इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन हीन होने के पहले ही शरीर छूटे क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है; पर, वश क्या है ?

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चंद्र ! सावधान। यही अंतिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरखा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्यंत आकाश में नेत्र भरे खड़े एकटक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुःख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इनका सिर नीचा हो। अपने धैर्य का स्मरण करो।

ह०—(घबड़ा कर ऊपर देख कर) अरे यह कौन है ? कुलगुरु भगवान् सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन[4] कर रहे हैं। (ऊपर) पितः ! मैं सावधान हूँ, सब दुःखों को फूल की माला[5] की भाँति ग्रहण करूँगा।

(नेपथ्य में रोने की आवाज सुन पड़ती है)

ह०—अरे अब सवेरा होने के समय मुरदा आया ! अथवा चांडाल कुल का सदा कल्याण हो, हमें इससे क्या।

---

१ हजारों दासियाँ। २ काटे गये। ३ बुरा संकेत। ४ आज्ञा। ५ हंसते-हंसते।

(खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा हमें रोती छोड़ के कहाँ चले गए हाय हाय रे !

ह०—अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इसको पुत्र का है। हाय हाय ! हमको भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और बीभत्स[1] कर्म सौंपा है ! इससे भी वस्त्र माँगना पड़ेगा।

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिए आती है।)

शै०—(रोती हुई) हाय बेटा ! जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले ! हाय ! हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुमने न देखा ! हाय हाय रे ! अब हमारी कौन गति[2] होगी ! (रोती है)

ह०—हाय ! हाय ! इसके पति ने भी इसको छोड़ दिया है। हा ! इस तपस्विनी को निष्करुण[3] विधि ने बड़ा ही दुःख दिया है।

शै०—(रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किसने लूट लिया ! हाय मेरी बोलती चिड़ियाँ[4] कहाँ उड़ गई ! हाय ! अब मैं किसका मुँह देख के जीऊँगी हाय ! मेरी अंधी की लकड़ी[5] कौन छीन ले गया ! हाय मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किसने तोड़ डाला ! अरे बेटा, तू तो मरे पर भी सुन्दर लगता है ! हाय रे ! अरे बोलता क्यों नहीं ! बेटा जल्दी बोल ! देख माँ कब की पुकार रही है। बच्चा ! तू तो एक ही दफे पुकारने में दौड़ कर गले से लपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता ?

(शव को बारंबार गले लगाती, देखती और चूमती है।)

ह०—हाय हाय ! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता।

शै०—(पागल की भाँति) अरे यह क्या हो रहा है ? बेटा कहाँ गए हो ? आओ जल्दी ! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगती है, यहाँ मुझको कौन ले आया है ? रे बेटा ! जल्दी आओ। अरे क्या कहते हो, मैं गुरू का फूल लेने गया था, वहाँ काले साँप ने मुझे काट लिया ? हाय ! हाय रे ! अरे कहाँ काट लिया ? अरे कोई दौड़

---

१ भयानक। २ अवस्था। ३ निर्दय। ४ परमप्रिय वस्तु। ५ सहारा।

के किसी गुनी[१] को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को। अरे वह साँप कहाँ गया, हम को क्यों नहीं काटता? काट रे काट, क्या उस सुकुँआर बच्चे ही पर बल दिखाना था? हमें काट! हाय! हमको नहीं काटता। अरे हियाँ[२] तो कोई साँप-वाँप नहीं है। मेरे लाल झूठ बोलना कब से सीखे? हाय हाय! मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते? बेटा, गुरुजी पुकार रहे हैं उनके होम की बेला[३] निकली जाती है। देखो बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं। दो जल्दी उनको दूब और बेलपत्र। हाय! हमने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते! (जोर से) बेटा! साँझ भई, सब विद्यार्थी लोग घर फिर आये, तुम अब तक क्यों नहीं आये? (आगे शव देखकर) हाय हाय रे! अरे मेरे लाल को साँप ने सचमुच डस लिया? हाय लाल! हाय मेरी आँखों के उजियाले[४] को कौन ले गया! हाय! मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहाँ उड़ गया! बेटा अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया! हाय मेरा बसा घर आज किसने उजाड़ दिया! हाय मेरी कोख[५] में किसने आग लगा दी! हाय मेरा कलेजा किसने निकाल लिया! (चिल्ला चिल्लाकर रोती है) हाय लाल कहाँ गये। अरे अब मैं किसका मुँह देख के जीऊँगी रे। हा! अब माँ कहके मुझको कौन पुकारेगा। अरे आज किस बैरी की छाती ठण्डी भई रे। अरे तेरे सुकुँआर अङ्गों पर भी काल को तनिक दया न आई। अरे बेटा आँख खोलो। हाय मैं सब बिपत तुम्हारा ही मुँह देखकर सहती थी, सो अब कैसे जीती रहूँगी। अरे लाल एक बेर तो बोलो! (रोती है)

ह०—न जाने क्यों इसके रोने से मेरा कलेजा फटा जाता है।

शै०—(रोती हुई) हाय नाथ! अरे अपने गोद के खेलाये बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते। हाय! तुमने तो इसको हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना, सो हमने इसकी यह दशा कर दी। हाय! अरे ऐसे समय में आकर नहीं सहाय होते! भला

१ सर्प का विष झाड़ने वाले। २ यहाँ। ३ अवसर। ४ आँखों की ज्योति। ५ सन्तान।

एक बार लड़के का मुँह तो देख जाओ ? अरे मैं अब किसके भरोसे जीऊँगी ?

ह०—हाय हाय ! इसकी बातों से तो प्राण मुँह को चले[1] आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है। यहाँ से हट चलें। (कुछ दूर हटकर उसकी ओर देखता हुआ खड़ा हो जाता है ।)

शै०—(रोती हुई) हाय ! यह बिपत का समुद्र कहाँ से उमड़ पड़ा ! अरे छलिया मुझे छल कर कहाँ गया ! (देखकर) अरे आयुस की रेखा[2] तो इतनी लंबी है, फिर अभी से यह वज्र[3] कहाँ से टूट पड़ा। अरे ऐसा सुंदर मुँह, बड़ी-बड़ी आँख, लंबी-लंबी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग ! हाय ! मरने के तुझ में कौन से लच्छन थे जो भगवान् ने तुझे मार डाला। हाय लाल ! अरे बड़े बड़े जोतसी[4] गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा सो सब झूठ निकला। हाय ! पोथी, पत्रा, पूजा, पाठ, दान, तप, जप, होम, कुछ भी काम न आया। तुम्हारे बाप का कठिन पुन्य[5] भी तुम्हारा सहाय न भया और तुम चल बसे। हाय !

ह०—अरे ! इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है (शव को भलीभाँति देखकर) अरे ! इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं। हाय ! न जाने किस बड़े कुल का दीपक[6] आज इसने बुझाया है और न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है। हाय ! रोहिताश्व भी इतना बड़ा भयाँ[7] होगा (बड़े सोच से) हाय हाय ! मेरे मुँह से क्या अमंगल[8] निकल गया, नारायण ! (सोचता है)

शै०—भगवान् विश्वामित्र ! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे भये ! हाय !

ह०—(घबड़ा कर) हाय हाय ! यह क्या ? (भलीभाँति देखकर रोता हुआ) हाय, अब तक मैं संदेह में ही पड़ा हूँ। अरे मेरी आँखे कहाँ गई थीं जिनने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना, और कान कहाँ गये

---

१ मर्मान्तक कष्ट। २ जोवन रेखा। ३ दैवी कोप। ४ ज्योतिषी। ५ कष्टों से अर्जित पुण्य। ६ वंश चलाने वाला। ७ हुआ। ८ बुरा भाव।

थे जिनने अब तक महारानी की बोली नहीं सुनी। हा पुत्र! हा लाल! हा सूर्यवंश के अंकुर! हा हरिश्चंद्र की विपत्ति के एकमात्र अवलंब[1]! हाय!! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया माँ को छोड़ कहाँ गए? अरे तुम्हारे कोमल अंग को क्या हो गया, तुमने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे? पुत्र, स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझसे कहते, मैं अपने बाहुबल[2] से तुमको इसी शरीर से स्वर्ग पहुँचा देता। अथवा अब इस अभिमान से क्या। भगवान् इसी अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र! (रोता है) आह! मुझ से बढ़कर कौन मंदभाग्य[3] होगा? राज्य गया, धन जन कुटुंब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण[4] पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुँह दिखाऊँ। निस्संदेह मुझ से अधिक अभागा और कौन होगा। न जाने हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं। जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुःख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निस्संदेह मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूँ। (रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलयकाल आ गया? नहीं यह बड़ा भारी असगुन हुआ है। इसका फल कुछ अच्छा नहीं। वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा। हा! न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है। (रोता है) हा सूर्य्यकुल आलवाल प्रवाल[5]! हा हरिश्चंद्रहृदयानंद! शैव्यावलंब! हा वत्स रोहिताश्व! हा मातृ-पितृविपत्तिसहचर[6]! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़कर कहाँ गए? आज हम सचमुच चांडाल हुए। लोग कहेंगे कि इसने न जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय! हम संसार को क्या मुंह दिखावेंगे। (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करें। हा निर्लज्ज प्राण! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते। हा! वज्रहृदय इतने

---

१ आधार। २ शक्ति से। ३ बुरे भाग्य वाला। ४ दुःखदायी। ५ सूर्यवंश के थाले का कोमल पत्ता। ६ दुःख का साथी।

पर भी तू क्यों नहीं फटता ? अरे नेत्रों ! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो ! या इस व्यर्थ प्रलाप[1] का फल ही क्या है ! समय बीता जाता है, इसके पूर्व कि किसी से सामना हो, प्राण-त्याग करना ही उत्तम बात है। (पेड़ के पास जाकर फाँसी देने योग्य डाल खोजकर उसमें दुपट्टा बाँधता है) धर्म मैंने अपने जान[2] सब अच्छा ही किया परंतु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण[3] तुम्हारे विरुद्ध पड़ा, सो मुझे क्षमा करना। (दुपट्टे की फाँसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंककर) गोविंद-गोविंद ! यह मैंने क्या अनर्थ अधर्म विचारा ! भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राणत्याग करना चाहा। भगवान् सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण नारायण ! इस इच्छाकृत[4] मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ? हे सर्वांतर्यामी जगदीश्वर, क्षमा करना। दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। अब तो मैं चांडालकुल का दास हूँ, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र। चलूँ, अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊँ, वा देखूँ अब दुःखिनी शैव्या क्या करती है ? (शैव्या के पास जाकर खड़ा होता है।)

शैं०—(पहले की तरह बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूँ। अब मैं किसका मुँह देखकर संसार में जीऊँगी ! हाय, मैं आज से निपूती[5] भई ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी ! हा नित्य सवेरे उठ कर अब मैं किसकी चिंता करूँगी ! खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझसे माँग माँग कर अब कौन खायगा ? मैं परोसी थाली सूनी देख कर कैसे प्राण रक्खूँगी ? (रोती है) हाय ! खेलते-खेलते आकर मेरे गले से कौन लिपट जायगा और माँ माँ कह कर तनिक २ बातों पर कौन हठ करेगा। हाय ! मैं अब किसको अपने आँचल से मुँह की धूल पोंछकर गले लगाऊँगी और किसके अभिमान से विपत में भी फूली फूली[6] फिरूँगी। (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं रह कर क्या करूँगी। (छाती पीट कर) हाय ! प्राण तुम अब भी

---

१ बकवाद। २ भरसक। ३ धर्मकार्य। ४ इच्छासे उत्पन्न। ५ विना पुत्रवाली। ६ प्रसन्न।

क्यों नहीं निकलते। हाय मैं ऐसी स्वार्थी हूँ कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती! नहीं नहीं अब मैं न जीऊँगी! या तो इस पेड़ में फाँसी लगा कर मर जाउँगी या गंगा में कूद पड़ूँगी!

(उन्मत्त[१] की भाँति उठ कर दौड़ना चाहती है।)

ह०—(आड़ में से)

तनहिं बेचि दासी कहवाई। मरति स्वामि आयसु बिनु पाई।
करु न अधर्म सोच जिय माँही। 'पराधीन सपने सुख नाहीं' ॥ ६१ ॥

शै०—(चौकन्नी होकर) अहा! यह किसने इस कठिन समय में उपदेश किया। सच है, मैं अब इस देह की कौन हूँ जो मर सकूँ? हाय दैव तुझसे यह भी न देखा गया कि मैं मरकर भी सुख पाऊँ (कुछ धीरज धरके) तो चलूँ छाती पर वज्र धरके अब लोकरीति[२] करूँ। (रोती और लकड़ी चुन कर चिता बनाती हुई) हाय! जिन हाथों से ठोंक ठोंक कर रोज सुलाती थी, उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूँगी। जिस के मुँह में छाला पड़ने के भय से कभी मैंने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे·········(बहुत ही रोती है)

ह०—धन्य देवी, आखिर तो चंद्रसूर्यकुल की स्त्री हो, तुम न धीरज करोगी तो और कौन करेगा।

शै०—(चिता बना कर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती और रोती है)

ह०—अब चलें उससे आधा कफन माँगें (आगे बढ़ कर और बलपूर्वक आँसुओं को रोक कर शैव्या से) महाभागे! श्मशान-पति[३] की आज्ञा है कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूँकने न पावे। सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो, तब क्रिया करो। (कफन माँगने को हाथ फैलाता है, आकाशसे पुष्पवृष्टि होती है)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्यमहो सत्यमहो दानमहो बलम्।
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्वं लोकोत्तरं कृतम् ॥ १२ ॥

---

१ विवेकशून्य। २ सांसारिक रिवाज। ३ श्मशान के मालिक।

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै०—हाय ! इस कुसमय में आर्य पुत्र की यह कौन स्तुति करता है ? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी[1] की यह गति हो। यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखंड है।

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) ! नारायण ! नारायण ! महाभागे, ऐसा मत कहो। शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त होगा। अपना धर्म विचारो। लाओ मृतकंबल[2] हमें दो अपना काम आरंभ करो। (हाथ फैलाता है)

शै०—(महाराज हरिश्चंद्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिह्न देखकर और कुछ स्वर, कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्यपुत्र, इतने दिन तक कहाँ छिपे थे ? देखो अपने गोद के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा ! तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भाँति श्मशान पर पड़ा है। (रोती है)

ह०—प्रिये ! धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है। देखो सवेरा हुआ चाहता है। ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले, और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल[3] रखकर रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कंबल हम को दो।

शै०—(रोती हुई) नाथ ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आँचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूँ, उसमें से भी आधा दे दूँगी तो यह खुला रह जायगा। हाय ! चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता। (बहुत रोती है)

ह०—(बलपूर्वक आँसुओं को रोककर और बहुत धीरज धरकर) प्यारी ! रोओ मत। ऐसे ही समय में तो धीरज और धरम रखना काम है। मैं जिसका दास हूँ उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिये क्रिया मत करने दो। इससे मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझकर तुम से इसका आधा कफन न लूँ तो बड़ा अधर्म हो। जिस

---

१ धर्म करने वाले। २ कफन। ३ पत्थर।

हरिश्चंद्र ने उदय से अस्त तक को पृथ्वी के लिये धर्म न छोड़ा उसका धर्म आध गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो सवेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान् सूर्य अपने वंश की यह दुर्दशा देख कर चित्त में उदास हों। (हाथ फैलाता है)

शै०—(रोती हुई) नाथ जो आज्ञा। (रोहिताश्व का मृतकंबल फाड़ा चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का-सा बड़ा शब्द और बिजली का-सा उजाला होता है। नेपथ्य में बाजे की और 'बस' 'धन्य' और 'जय जय' की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं, और भगवान् नारायण प्रगट होकर राजा हरिश्चंद्र का हाथ पकड़ लेते हैं।)

भ०—बस, महाराज बस, धर्म और सत्य सबकी परमावधि[1] हो गई। देखो तुम्हारे पुण्य भय से[2] पृथ्वी बारंबार काँपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो। (नेत्र से आँसू बहते हैं)

ह०—(साष्टांग दंडवत करके रोता हुआ गद्गद् स्वर से) भगवन्! मेरे वास्ते आपने परिश्रम किया। कहाँ यह श्मशान-भूमि, कहाँ यह मर्त्य-लोक, कहाँ मेरा मनुष्य शरीर और कहाँ पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानंद साक्षात् आप (प्रेम के आँसुओं से और गद्गद कंठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

भ०—(शैव्या से) पुत्री अब सोच मत कर। धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चंद्र ऐसा पति मिला है (रोहिताश्व की ओर देखकर) वत्स रोहिताश्व! उठो, देखो तुम्हारे माता-पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं। (रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान् को प्रणाम करके माता-पिता का मुँह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है।)

ह० और शै०—(आश्चर्य, आनंद, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते, आँखों से आँसू बहते हैं और एकटक भगवान् के मुखारविंद की ओर देखते हैं।)

(श्री महादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र आते हैं *।)

---

१ चरम सीमा। २ पुण्य प्रताप से।

*श्री महादेव, पार्वती और भैरव का ध्यान सबको विदित है, इन्द्र और विश्वा-

सब—धन्य महाराज हरिश्चंद्र धन्य ! जो आपने किया सो किसी ने न किया, न करेगा ।

(राजा हरिश्चंद्र, शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं ।)

वि०—महाराज यह केवल चंद्र सूर्य तक आपकी कीर्ति स्थिर रहने के हेतु मैंने छल किया था, क्षमा कीजिए और अपना राज्य लीजिए ।

(हरिश्चंद्र भगवान् और धर्म का मुँह देखते हैं ।)

धर्म—महाराज, राज आपका है इसका मैं साक्षी हूँ, आप निस्संदेह लीजिए ।

सत्य—ठीक है जिसने हमारा अस्तित्व[1] संसार में प्रत्यक्ष[2] कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज्य है ।

श्रीमहादेव—पुत्र हरिश्चंद्र ! भगवान् नारायण के अनुग्रह से ब्रह्म-लोक पर्यंत तुमने पाया तथापि मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है, तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्ती होय ।

पा०—पुत्री शैव्या ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियाँ गावें । तुम्हारी पुत्रवधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करे ।

(हरिश्चंद्र और शैव्या प्रणाम करते हैं ।)

भै०—और जो तुम्हारी कीर्ति कहे सुने और उसका अनुसरण[3] करे उसको भैरवी यातना[4] न हो ।

इंद्र—(राजा को आलिङ्गन करके और हाथ जोड़ के) महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए यह सब मेरी दुष्टता थी । परन्तु इस बात से आपका कल्याण ही हुआ । स्वर्ग कौन कहे आपने अपने सत्य बल से ब्रह्मपद[5] पाया । देखिए आपकी रक्षा के हेतु श्रीशिवजी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे, नारदजी बटुक बने थे, साक्षात् धर्म ने आपके

मित्र का लिख चुके हैं । धर्म चतुर्भुज, श्याम रंग, पीतांबर, दंड, पत्र और कमल हाथ में । सत्य शुक्ल वर्ण, श्वेत वस्त्राभरण, नारायण के चारों शस्त्र हाथ में ।

१ स्थिति । २ प्रकट । ३ अनुसार चले । ४ मृत्यु के बाद भैरव का कष्ट । ५ मुक्ति ।

हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया; और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर[1] और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान् नारायण की इच्छा से केवल आपके सुयश[2] के हेतु किया गया।

ह०—(गद्गद स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ानेवाला और कौन है!

भ०—महाराज! और भी जो इच्छा हो माँगो।

ह०—(प्रणाम करके गद्गद स्वर से) प्रभु! आपके दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आपकी आज्ञानुसार यह वर माँगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुंठ[3] जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

भ०—एवमस्तु[4], तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग, जीवमात्र सब परमधाम जायँगे और कलियुग में धर्म के सब चरण[5] टूट जायँगे, तब भी वहीं तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थित रहेगा। इतना ही देकर मुझे संतोष नहीं हुआ, कुछ और भी माँगो। मैं तुम्हें क्या क्या दूँ क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका। तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुमको कुछ और वर दूँ। तुम्हें वर देने में मुझे संतोष नहीं होता।

ह०—(हाथ जोड़कर) भगवान्! मुझे अब कौन इच्छा है? और क्या वर माँगूँ तथापि भरत का यह वाक्य[6] सुफल हो—

'खलगनन[7]सों सज्जन दुखी मत होइँ, हरिपद रति[8] रहै।
उपधर्म छूटैं सत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर[9], नारिनर सम होहिं, सब जग सुख लहै।
तजि ग्राम[10] कविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै॥ ६२॥'

(पुष्पवृष्टि और बाजे की ध्वनि के साथ जवनिका गिरती है।)

इति श्रीसत्यहरिश्चंद्र नाटक संपूर्ण हुआ।

---

१ सेवक। २ उज्ज्वल कीर्ति। ३ स्वर्ग। ४ ऐसा ही हो। ५ आधार। ६ भरत वाक्य—नाटक के अन्त का आशीर्वादात्मक पद। ७ दुष्टों से। ८ प्रेम। ९ ईर्ष्या-द्वेष। १० ओछी कविता।

Library IIAS, Shimla
H 812.2 B 469 S
00006309

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
LIBRARY

ACC NO. 6309
Author. Bharatendu Hari
Title. Satya Harishchand natak

BORROWER'S NAME

Mrs V. Bhard

मध्यमा परीक्षोपयोगी ग्रन्थाः—

कारिकावली-मुक्तावली—'मयूख' संस्कृत-हिन्दी टीका प्रत्यक्षखण्ड १।)

का० मुक्तावलीतत्त्वालोक—(मुक्तावली-प्रश्नोत्तरी) ॥)

कुमारसंभव—'पुंसवनी' संस्कृत-हिन्दी टीका, परीक्षोपयोगी १-४ सर्ग २)

अभिज्ञानशाकुन्तल—प्रो० कान्तानाथ शास्त्री एम. ए. सम्पादित नोट्स,
शाकुन्तल समीक्षा आदि से सुसज्जित 'किशोरकेलि' संस्कृत हिन्दी टीका ६)

रघुवंश—मल्लिनाथी-सुधा संस्कृत-हिन्दी टीका सहित। सर्ग १ तथा ५ १॥)
१-२ सर्ग १॥) २-३ सर्ग १॥) २-४ सर्ग २।) १-५ सर्ग ३)

रघुवंश—मल्लिनाथी तथा 'मणिप्रभा' संस्कृत-हिन्दी टीका संपूर्ण ५)

किरात—परीक्षोपयोगी 'सुधा' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित १-२ सर्ग १।)

संस्कृत रचना प्रकाश—प्रो० रमाकान्त द्विवेदी एम० ए० मध्यमा
परीक्षा निर्धारित हिन्दी से संस्कृत और संस्कृत से हिन्दी अनुवाद का ग्रन्थ १।।।≡)

चन्द्रालोक—पौर्णमासी-कथाभट्टी संस्कृत-हिन्दी टीका २)

मध्यकौमुदी - सुधा-इन्दुमती संस्कृत-हिन्दी टीका, नोट्स, सहित ६)

मध्यकौमुदीरहस्य (प्रश्नोत्तरी)—परीक्षोपयोगी उत्तम संस्करण २)

भट्टिकाव्य—चन्द्रकला-विद्योतिनी संस्कृत-हिन्दी टीका परिशिष्ट सहित
१ से ११ सर्ग ७) १२ से २२ सर्ग ५)

दशकुमार—'बालविबोधिनी' संस्कृत-हिन्दी
पूर्वपीठिका १।), पूर्वपीठिका, प्रथ

अलङ्कारसारमञ्जरी—मध्यमा निर्धारित

व्युत्पत्तिप्रदर्शन-गूढाशुद्धिप्रदर्शन—न

प्रबन्धपारिजात—मध्यमा परीक्षानिर्धारित संस्कृत निबन्ध ग्रन्थ १।)

राष्ट्रभाषा सरल हिन्दी व्याकरण—हिन्दी व्याकरण का सर्वोत्तम ग्रन्थ १।)

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१

Library IIAS, Shimla
H 812.2 B 469 S
00006309